मानस में सुमित्रा

रचयिता
सर्वाम्नाय श्री तुलसीपीठाधीश्वर
श्रीमद् जगद्गुरु श्री रामानन्दाचार्य
अनन्त श्री समलङ्कृत
१००८ श्री रामभद्राचार्य जी महाराज

मानस में सुमित्रा

☆

रचयिता—
सर्वाम्नाय श्री तुलसीपीठाधीश्वर
श्रीमद् जगद्गुरू श्री रामानन्दाचार्य
अनन्त श्री समलङ्कृत
१००८ श्री रामभद्राचार्य जी महाराज

☆

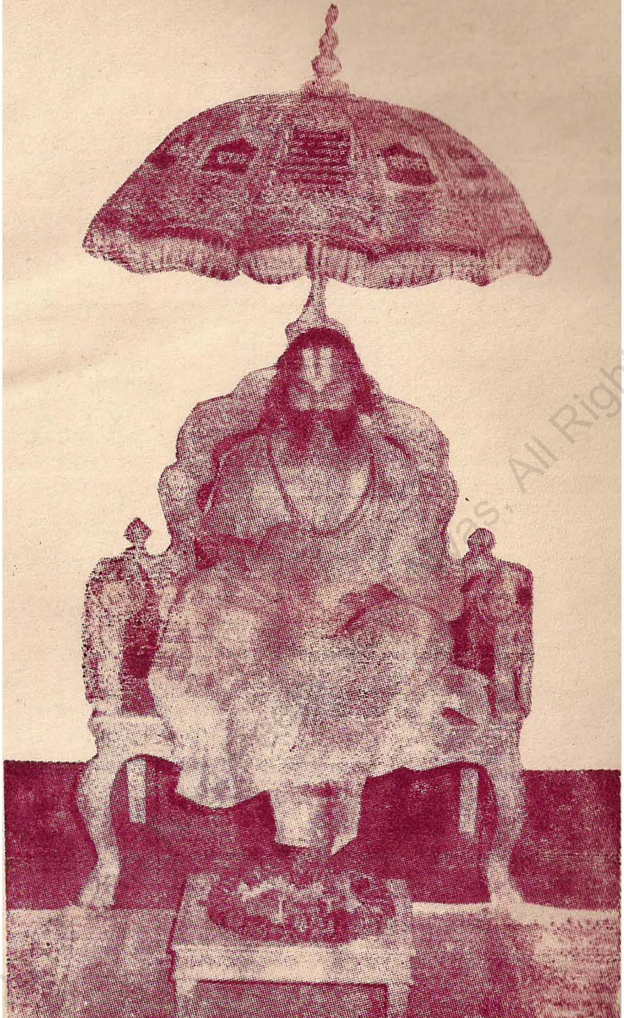
प्रकाशक—
श्री राघव साहित्य – प्रकाशन निधि
राजकोट (गुजरात)

● प्रकाशक :
श्री राघव साहित्य प्रकाशन निधि
श्री गीता आश्रम,
भक्तिनगर – सोसायटी,
राजकोट (गुजरात)

● प्रथम संस्करण : २००१ प्रतियाँ
सम्वत् २०४५
श्री मकर संक्रान्ति
दिनांक १४–१–१९८९

● न्योछावर रु० ११-००

● मुद्रक :
स्वास्तिक प्रिन्टर्स,
स्टेशन रोड, सतना (म. प्र.) फोन : २३३१



सर्वाम्नाय श्री तुलसीपीठाधीश्वर
श्रीमद् जगद्गुरू श्री रामानन्दाचार्य
अनन्त श्री समलङ्कृत १००८ श्री
रामभद्राचार्यजी महाराज

॥ श्रीः ॥

सम्पादकीय

वन्दे सीतापतिं सीतां तुलसीं मानसं तथा ।
रामानन्दं गुरुं धीरं स्वाचर्यं जगतां मुहुः ॥

सकल संत कलहंसावतंस कविकुल शिरोमणि श्रीतुलसीदासजी की परम पुनीतकृति श्रीरामचरितमानस को कौन नही जानता जिसके मगलमय श्रीसीतारामभक्तिरस से समस्त विश्व आप्लावित हो रहा है। यह कथन अतिरञ्जन नहीं है कि रामचरितमानस प्राणिमात्र का मानस हो चुका है। इसी श्रीरामचरितमानस की एक विशिष्ठ नारी पात्र के रूप में वर्णित है "मानस में सुमित्रा" नामक इस प्रवचन पुस्तक में। जिसके प्रवचन कर्ता पदवाक्यप्रमाण पारावारीण आर्यवाङ्मय के साथ ही समस्त तुलसीसाहित्य के पारदृश्वा विद्वान सर्वाम्नाय श्री तुलसीपीठाधीश्वर श्रीमद् जगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य श्रीरामभद्राचार्यजी महाराज ने अपनी शास्त्र-सिद्धान्तों के गांभीर्य से मंडित एवं सरल तथा सुबोध शैली में अपूर्व कुशलता से सुमित्राजी के परमपावन जीवन चरित्र को श्रीमानसजी के ही आलोक में अत्यन्त निपुण निरीक्षण का सराहनीय प्रयास प्रस्तुत किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ के नौ प्रवचनों में आचार्यचरण की नव नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा के बड़े ही मनोहर चित्र उभरकर आये हैं। जिनके चिन्तन मात्र से आकण्ठ भौतिकवाद से ग्रस्त प्रणि भी बड़ी ही सुगमता से श्री सीतारामजी के श्री चरणारविन्द के समीप जा सकता है।

"श्रीराघव साहित्य प्रकाशन निधि" आचार्यचरण का परम कृतज्ञ है कि जिसको स्वयं जगद्गुरु रामानन्दाचार्य (चित्रकूट) ने "मानस में सुमित्रा" जैसे ग्रन्थरत्न को प्रकाशित करने का सुअवसर प्रदान किया न्यास धन्यवाद देता है श्री उमाचरणजी गुप्त एवं उनकी धर्म परायणा सहचारिणी सौ. श्रीमती पुष्पादेवी को जिन्होंने इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ अपने धन का सदुपयोग करके ट्रस्ट को प्रोत्साहित किया।

अन्त में हम स्वास्तिक प्रिन्टर्स, सतना के अध्यक्ष श्री अजय कुमार जैन एवं उनके सभी कर्मचारियों को धन्यवाद देना चाहेंगे जिनके अथक परिश्रम से इस पुस्तक का मुद्रण यथा समय सम्भव हो सका।

मकरसंक्रान्ति
१४-१-१९८९

सम्पादिका
कु० गीतादेवी
मेनेजिंग ट्रस्टी
श्रीराघव साहित्य प्रकाशन निधि
श्री गीताआश्रम
भक्ति नगर सर्कल, राजकोट-२ (गुजरात)

॥ श्रीराघवो विजयतेतराम् ॥

प्रथम कुसुम

भक्ति स्वरूपार्चित रामरूपा, प्रेमैकमूर्तिः हृतलोकजूर्तिः।
सौमित्रिमाता ललनाललाम्, शोभा विचित्रा जयता सुमित्रा ॥

वाञ्छाकल्पतरूभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च ।
पतितानां पावनेभ्यो वैश्णवेभ्यो नमो नमः ॥
श्रीसीतानाथसमारम्भां रामानन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे गुरुपरम्पराम् ॥
नीलतामरसदामरुचि, नरपतिललितललाम ।
निजपदकमले मधुपमिव, रमय मनो मम राम ॥
श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मन मुकुरु सुधारि ।
बरनउं रघुवर बिमल जसु, जो दायक फल चारि ॥

❀ ❀ ❀ ❀

गौर किसोर वेषु बर काछें ।
कर सर चाप रामके पाछें ॥
लछिमन नामु रामु लघु भ्राता ।
सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ॥

(बालकाण्ड २२१/- ७, ८)

भगवान्, मर्यादापुरुषोत्तम, परिपूर्णतम, परात्पर, परमात्मा, परब्रह्म, सच्चिदानन्दघन, कन्दर्पदर्पदलन, सौन्दर्यनिरवद्यरूप, कोशलभूप, अयोध्यापति, श्रीमद्राघवेन्द्र, रघुनाथ समस्त अवतारों के अवतारी हैं। अर्थात् जिनसे सभी अवतार अपने आप प्रकट होते हैं। इसलिये श्रीमद्भागवतजी में जहां पर सभी अवतारों के संख्या की गणना की गई है वहाँ भगवान् श्रीमद्रामजी के अवतार की गणना क्रमबद्ध संख्या में नहीं है। यथा–

अवतारे षोडशमे पश्यन् ब्रह्मद्रुहो नृपान् ।
त्रिःसप्तकृत्वः कुपितो निःक्षत्रामकरोन्महीम् ॥

(श्रीमद्भागवत– १/३/२०)

अर्थात् अवतारों में सोलहवां अवतार परशुरामजी का हुआ जिन्होंने इक्कीस बार कुपित होकर पृथ्वी को निःक्षत्र बनाया।

पश्चात् वेदव्यासजी कहते हैं कि,

ततः सप्तदशे जातः सत्यवत्यां पराशरात्।
चक्रे वेदतरोः शाखा दृष्ट्वा पुंसोऽल्पमेधसः ॥

(श्रीमद्भागवत १/३/२१)

अर्थात—

यह सर्वविदित है कि परशुरामजीके पश्चात् भगवान् श्रीरामका अवतार हुआ किन्तु आश्चर्य यह है कि परशुरामजीके पश्चात् होने वाले त्रेतायुग के अवतार को सत्रहवीं संख्या न देकर द्वापरयुगके अवतार वेदव्यासजीको सत्रहवां अवतार बताया गया। इसके अनन्तर पुनः वेदव्यासजीने कहा कि,

नरदेवत्वमापन्नः सुरकार्यचिकीर्षया।
समुद्रनिग्रहादीनि चक्र वीर्याण्यतः परम् ॥

(श्रीमद्भागवत १/३/२२)

देवताओं का कार्य करने के लिये भगवान् ने नरदेवत्व को स्वीकारा एवं श्रीराम रूप में आविर्भूत होकर सागरनिग्रह आदि बड़े महत्वपूर्ण कार्य किये।

पुनः उनसे पूछा गया कि बलराम और श्रीकृष्ण ? तो उन्होंने कहा कि,

एकोनविंशे विंशतिमे वृष्णिषु प्राप्य जन्मनी।
रामकृष्णाविति भुवो भगवानहरद्भरम् ॥

(श्रीमद्भागवत १/३-२३)

बलराम एवं श्रीकृष्ण उन्नीसवें एवं बीसवें अवतार हैं।

अतः श्रीरामजी को अठारहवां अवतार कि जिसका जोड़ नौ पूर्णाङ्क होता है (१+८=९) बताकर वेदव्यासजी ने और भी स्पष्ट कर किया कि भगवान् श्रीराम अवतार नहीं बल्कि अवतारी हैं। अंश नहीं अंशी हैं.

सर्वेषां अवताराणां अवतारी रघूत्तमः ॥

साधु लोग भी कहा करते हैं कि,

अवधधाम धामधिपति, अवतारन पति राम ।
सकल सिद्धि श्री जानकी, दासन्ह पति हनुमान ॥

एतावता यहाँ केवल गुणावच्छेदेन भगवान् श्री राम का अवतार बताया गया है यहां अवतारी ही अवतार बनके आये हैं जिनके अंश से अनेक शंकर, अनेक ब्रह्मा तथा अनेक विष्णु प्रकट होते हैं । यथा,

संभु बिरंचि बिष्नु भगवाना ।
उपजे जासु अंस ते नाना ॥

वे भगवान् श्रीमद् राम स्वयं अयोध्या में आनन्द करने के लिये अवतरित हो रहे हैं अर्थात् उतर रहे हैं । वे स्वयं परिपूर्णतम परात्पर परब्रह्म है ।

ऐसे परब्रह्म को जो सबसे अधिक दुलार कर सकती हैं उस "मां" का चरित्र क्या सामान्य होगा ? तथा जिसके ऊपर रामजी को भी अत्यधिक प्रेम हो उस "मां" का चरित्र सामान्य नहीं हो सकता । गीतावली रामायण में तो बहुत स्पष्ट कौशल्या जी कहतीं हैं कि,

पूछिहौं न बिहँसी मेरे रघुबर कहां सुमित्रा माता

(गीतावली अयोध्या ५१)

जिनके लिये बारबार रामजी पूछते हों कि मेरी माँ सुमित्रा कहाँ हैं ? उनका चरित्र क्या साधारण हो सकता है ? विचार करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि भरत जी की माता होने पर भी कैकेयी का चरित्र लोकपक्ष में उतना उत्कृष्ट नहीं है और कौशल्या जी का चरित्र तो अवर्णनीय है परन्तु कई ऐसे प्रसङ्ग हैं कि जिनमें सुमित्रा जी का चरित्र इन सबसे उत्कृष्ट दिखाई देता है । आचार्यों ने विविध दृष्टि से इनको देखा है । कभी इनको विद्यारूप में कहा जाता है तो कोई आचार्य इन्हें "सुमित्रोपासना" उपासना रूप में देखते हैं । किन्हीं आचार्यों का मत हैं कि ये साक्षात् साधना हैं बड़ा ही ऊचां व्यक्तित्व हैं इनका । यही एक ऐसी महिलारत्न हैं कि जिन्होने भगवान् को, भगवान् के भक्त को तथा भगवान् के भक्त क

भक्त को भी गोद में खिलाया। ऐसा कह सकते हैं कि कौशल्या जी भगवान् की मां हैं और कैकेयी जी भक्त को माँ हैं जबकि सुमित्रा जी भगवान् की, भगवान् के भक्त की तथा भगवान् के भक्त के भक्त की भी मां हैं। इतना ऊंचा सौभाग्य किसी को भी नहीं प्राप्त हुआ।

गोस्वामी जी गीतावली में कहते हैं कि,

मोद भरी गोद लिये लालति सुमित्रा देखि,
देव कहैं सबको सुकृत उपवियो है ॥

(गीतावली बाल० १०)

सुमित्रा जी को अति आनन्द पूर्वक श्री राघव को गोद में लेकर दुलार करती देखकर देवगण कहते हैं कि इस समय सभी का पुण्य प्रकट हुआ है।

अहो ! कितना मधुर व्यक्तित्व है सुमित्रा जी का ! भक्तमालकार से पूछा गया कि भजन किसका किया जाय ? तो उन्होने कहा,

सब संतन मिलि निर्णय कियो, मथि श्रुति पुरान इतिहास ।
भजिबे को दोउ सुघर, कै हरि कै हरिदास ॥

अर्थात् या तो भगवान् भजनीय हैं या तो भगवान् के भक्त। वैसे तो भगवान् का भजन करना चाहिये पर मान लीजिये कि हम भगवान् का भजन नहीं कर पा रहे हैं तो भगवान् के भक्त के भजन से भी हमारा कल्याण हो जाता है।

गजेन्द्र उद्धार के प्रसंग में जब प्रभु गजेन्द्र से पहले ग्राह को मोक्ष देते हैं तब देवताओं ने उनसे प्रश्न किया कि प्रभु ! स्तुति तो आपकी गजेन्द्र ने की और आपने पहले मोक्ष ग्राहको दिया। ऐसा क्यों ?

भगवान् ने कहा, आप लोग जानते नहीं गजेन्द्रने मेरा चरणचिह्न पकड़ा था जबकि ग्राहने तो मेरे भक्तका चरण पकड़ा था इसलिये गजेन्द्रसे पहले ग्राह मोक्षका अधिकारी है।

इससे यह निष्कर्ष निकला कि "भजिबे को दोउ सुघर कै हरि कै हरिदास" भगवान् का भजन किया जाय या तो भगवान्के भक्त का। पर गोस्वामीजीने और भी एक सरल मार्ग बताया, उन्होंने कहा कि,

सबही कहावत रामके, सबही रामकी आस।
राम कहत जेहि आपनो, तेहि भजु तुलसीदास॥

सभी लोग रामजीके कहलाते हैं सभीको रामजीकी आशा है पर भजा किसको जाय? तो गोस्वामीजी का मत है कि जिसको श्रीराम अपना कहते हों वही भजनीय है।

अब जिज्ञासा यह होती है कि रामजी किसको अपना मानते हैं? तो

भरत सरिस को रामसनेही।
जग जप राम राम जप जेही॥

सारा संसार रामजी का भजन करता है और श्रीराम भरतजी को भजते हैं ऐसे भरतजी का जो भजन कर रहे हों वे कितने भाग्यशाली हैं? उन भाग्यशालियों में प्रथम नाम आता है शत्रुघ्नजी का, यथा

रिपुसूदन पद कमल नमामी।
सूर सुसील भरत अनुगामी।

अत: शत्रुघ्नजीके भाल पर ऊर्ध्वपुण्ड्रकी रेखायें देखकर भक्तोंने गोस्वामीजीसे कहा कि महाराज इनका ऊर्ध्वपुण्ड्र कुछ अपूर्व एवं अलौकिक प्रतीत होता है किस रजके बनाये हुए पासेसे ये तिलक करते होंगे?

गोस्वामीजीने कहा कि—

"लक्ष्मणानुज भरतरामसीता चरनरेनु रूषित भालतिलकधारी"
(विनय पत्रिका-४०)

इनके तिलकको दाहिनी रेखा तो श्रीरामजीके चरणरज से लगाई हुई है तथा वाम रेखा श्रीभरतभद्रके चरणरज को अपने अश्रुओंसे गीला करके लगाई हुई है और मध्य में जो श्री है वह श्री किशोरीजी के चरणरज से निर्मित है, क्योंकि अनन्त देववनितायें श्रीकिशोरीजी को प्रणाम करने आती हैं तब उनका सिन्दूर किशोरीजीके चरणों में लगने के कारण उनके चरण और ज्यादा लाल हो जाते हैं अत: उन्हीं अरूण चरणाम्बुजों की रज से ग[illegible] कुमार श्री लगाते हैं।

ऐसे दिव्य व्यक्तित्वधारी श्रीशत्रुघ्नजीको प्रकट करने वाली "माँ" सामान्य नहीं हो सकती।

कौशल्याजी ने राघवेन्द्ररूप भाग को प्रकट किया, कैकेयीजी ने भरत रूप अनुरागको प्रकट किया पर सुमित्राजीने लक्ष्मणरूप विराग एवं शत्रुघ्नरूप त्याग को प्रकट किया। इन दो विभूतियोंको प्रकट करने वाली "माँ" क्या साधारण हो सकती है? कदापि नहीं।

श्रीमानसजी में गोस्वामीजी कह ही रहे हैं कि भगवती सुमित्राजी का व्यक्तित्व कौशल्याके बाद ही विश्वरंगमंच पर उपस्थित होता है। हवि विभाग प्रसंगमें कह रहे हैं कि,

अर्धभाग कौसल्यहि दीन्हा।
उभय भाग आधे कर कीन्हा॥
कैकेई कहं नृप सो दयऊ।
रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि।
दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥

महाराज दशरथजीने अग्नि द्वारा प्रदत्त हवि के अर्धभागको कौशल्याजीके लिये अर्पित किया एवं अवशिष्ट अर्ध भाग के भी दो भाग करके चतुर्थांशके रूपमें द्वितीयांश कैकेयीजीको देकर अवशिष्ट चौथे भाग को पुनः दो भागों में विभक्त करके इन्हीं दो भागों को कौशल्या एवं कैकेयी के हाथ से अत्यन्त प्रसन्नता पूर्वक सुमित्रा भगवती को दिलाया।

अर्थात् सुमित्रा जी की ऐसी भूमिका है कि जिनका व्यक्तित्व जीवों को भगवान्से भी मिला सकता है और भक्तसे भी मिला सकता है। यदि भगवान् से मिलना है तो सुमित्रा जी के प्रथम पुत्र लक्ष्मण जी की शरण स्वीकारनी चाहिये वे जीवको भगवान् से मिला देगें और यदि भक्त से मिलना है तो सुमित्रा जी के द्वितीय पुत्र शत्रुघ्न कुमार जी की शरण स्वीकारनी चाहिये। अर्थात् सुमित्रा जी के व्यक्तित्व ने भक्त मालकार के "कै हरि कै हरिदास" इस विकल्प को अन्यथा कर डाला।

सुमित्रा जी ने जीवों को दोनों प्रकार से बड़भागी बनाया है यदि कोई राम जी को चाहते हैं तो वे लक्ष्मण कुमार का अनुकरण

कर ले और यदि कोई रामप्रेम को चाहते हैं तो रामप्रेम रूप साक्षात् भरत जी हैं अतः शत्रुघ्न कुमार का अनुकरण कर ले तो लक्ष्मण जी की कृपा से राम जी की कृपा तथा शत्रुघ्न जी की कृपा से भरत जी की कृपा प्राप्त हो जायेगी। इन दोनों की कृपा में यदि मूल किसी को माना जाय तो वह साक्षात् सुमित्रा जी हैं।

इसलिये आज मिथिला नगरी में अटारी में से श्रीराम-लक्ष्मण जी के दर्शन करती हुई सखियां परिचय दे रही हैं। मिथिला नगरी में घूमते हुए प्रभु का बड़ा अद्भुत रूप लावण्य है उनके दर्शन से सभी लोग कृतकृत्य हो रहे हैं यहां तक कि विदेहराज जनक जी भी भगवान् श्री राघवेन्द्र की रूप माधुरी की एक ही झलक में अपने ज्ञान–वैराग्य को डुबों देते हैं और कहते हैं कि,

इन्हहिं बिलोकत अति अनुरागा।
बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा॥

उस समय श्रीमद् विदेहराज श्रीराम एवं लक्ष्मण जी के स्नेह की मीमांसा करते हुए कहते हैं,

सुनहु नाथ कह मुदित विदेहू।
ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू॥

इन दोनों का सहज स्नेह ब्रह्म और जीवके समान है। ब्रह्म की माता कौशल्या हैं तथा जीवों के आचार्य श्री लक्ष्मण जी की माता बनने का सौभाग्य माँ सुमित्रा जी को मिला।

हमारे समक्ष दो सत्तायें है एक गुरू की सत्ता और दूसरी गोविन्द की सत्ता। आजकल कुछ ऐसे लोग हैं जो कहते हैं कि गोविन्द की कोई सत्ता ही नहीं वे केवल गुरू की सत्ता को ही मानते हैं किन्तु यह थोड़ा कम जचता है। गुरू की सत्ता गोविन्द की सत्ता के बिना अधूरी है। गुरू की उपयोगिता केवल अपने पुजवाने के लिये नहीं अपितु गोविन्द के दर्शन के लिये है। यह कहा जा सकता है कि गोविन्द दृश्य हैं तो गुरू दर्शक। जैसे चश्मे से सूक्ष्माति सूक्ष्म अक्षरों को देखा जा सकता। है जैसे दूरबीन से दूर दूर की वस्तु एक दम समीप में दिखाई देती है। उसी प्रकार श्री गुरू कृपा रूप दुरबीन से परम सूक्ष्म परमात्मा का दर्शन किया जा सकता है। अतः गुरू की सत्ता गोविन्द के लिये है,

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥

इसलिये केवल गुरू की सत्ता या केवल गोविन्द की सत्ता नहीं मानी जाती, हां इतना अवश्य है कि साधक कोटि में गोविन्द से भी गुरू की सत्ता ऊंची मानी जाती है

तुम्ह तें अधिक गुरहि जियं जानी ।
सकल भायं सेवहिं सनमानी ॥

अतः कुरू गोविन्द से बड़े हैं,

गुरु गोविन्द दोउ खड़े काके लागू पाय ।
बलिहारी गुरू आपने गोविन्द दियो बताय ॥

यदि गुरु गोविन्दसे बड़े है तो स्पष्ट हो गया कि गुरुकी माता भी गोविन्दकी माता से बड़ी हैं। गोविन्द है श्रीराम तथा गुरु है जीवाचार्य श्रीलक्ष्मणकुमार। अतः गोविन्दकी माता कौशल्याजी से भी गुरु जीवाचार्य श्रीलक्ष्मणजी की माता सुमित्राजी विशेष महान् हैं।

मिथिला की सखियों ने श्रीरामको निहारा और कह दिया कि ये बड़े ही सुन्दर राजकुमार हैं इनकी किशोर अवस्था है, ये सुन्दरता के सदन, सांवले और गौर वर्ण के तथा सुखके धाम हैं, इनके अङ्ग-अङ्ग पर कोटि कोटि कामदेवों को निछावर कर देना चाहिये,

बय किसोर सुषमा सदन, स्याम गौर सुख धाम ।
अंग अंग पर बारिअहिं, कोटि कोटि सत काम ॥

अब परिचय की जिज्ञासा हुई कौन हैं ये ? तो सखी ने उत्तर दिया, पहले तो श्रीरामका बड़ा मधुर परिचय दिया,

स्याम गात कल कंज बिलोचन ।
जो मारीच सुभुज मदु मोचन ॥
कौशल्या सुत सो सुख खानी ।
नामु रामु धनु सायक पानी ॥

जिनका श्याम शरीर, सुन्दर कमल जैसे नेत्र हैं, जो मारीच और सुबाहुके मद को चूर करने वाले, सुख की खान एवं हाथ में

धनुषबाण धारण किये हुए हैं वे कौशल्या के पुत्र हैं इनका नाम राम है।

इतना कहकर सखी रुक गई। कहा कि हे सखि! अब जरा सावधानी से सुनना। सांवले राजकुमार तो कौशल्या के पुत्र है और गौर वर्ण वाले जो राजकुमार हैं, लक्ष्मणजी, उनकी सुमित्राजी माता है।

सुनु सखि तासु सुमित्रा माता।

अन्तर हुआ, उत्तर पद हमेशा प्रधान होता है। अर्थात् रामजीके द्वारा कौशल्याजी का यश बढ़ता है किन्तु सुमित्राजीके यहां ऐसा नहीं है वहाँ तो सुमित्राजीके द्वारा लक्ष्मणजीका यश बढ़ता है। यदि सुमित्रा जैसी माँ न रही होती तो लक्ष्मणजी का इतना ऊँचा यश न होता।

यहां शब्दों में कितना अन्तर है। श्रीराम कौशल्याजीके पुत्र हैं अर्थात् प्रथमा श्रीराम में है और कौशल्याजी में षष्ठी है। षष्ठीको कारक और प्रातिपदिकार्थ नहीं माना जाता। षष्ठी सम्बन्धार्थक हैं। रामजी बने बनाये आय उन्होंने कौशल्याजीको यश दिया, सुख दिया,

सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपा करि देहु॥

कौशल्याजीको प्रभुने छः वस्तु दी। अपूर्व सुख, अपूर्व गति, भक्तोचित भक्ति, भगवत् चरणोंमें प्रेम, विशुद्ध विवेक एवं अवर्णनीय रहन। अतः गीतावली में गोस्वामीजीने कहा भी कि,

सुभग सेज सोभित कौशिल्या रुचिर राम-सिसु गोद लिये।

महारानी कौशल्या सुन्दर बालक राम को गोदमें लिये मनोहर शय्या पर सुशोभित हैं।

इसी पद का अन्तिम वाक्य गोस्वामीजी का है,

तुलसींदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न बिये॥

कौशल्याजी ने इतना बड़ा सुख श्रीराघवेन्द्र सरकारसे पाया है कि ऐसा सुख कौशल्या को छोड़कर और किसीको नहीं मिला।

कौशल्यासूक्तिसम्भूतं, जानकीकण्ठभूषणम्॥

भगवान् राम कौशल्या रूपी सूक्ति से उत्पन्न मोती हैं, तो सूक्तिसे मोतीका मूल्य नहीं होता किन्तु मोतीके कारण ही सूक्तिका मूल्य होता हैं पूर्व दिशासे चन्द्रमाका यश नहीं बढ़ता अपितु चन्द्रमाके कारण ही पूर्व दिशा का यश है। अतः सुमित्राजीने स्वयं गाया,

मोती जायो सीपमें अरु अदिति जन्यो जग-भानु।
रघुपति जायो कौसिला गुन मंगल रूपनिधानु।
भुवन विभूषण राम लाल॥
(गीतावली बाल० २२-११)

यहां हम स्पष्ट कह सकते हैं कि सुमित्राजी एक ऐसी व्यक्तित्व सम्पन्ना महिला हैं कि उन्होंने अपने बेटे को क्या क्या नहीं दिया। कौशल्याजी ने अपने बेटे से छः छः वस्तु ली है, और सुमित्राजी ने अपने वेटे को छः वस्तु दी है, यथा,

तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउअबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥

विदा दी, उपदेश दिया, शिक्षा दी, आज्ञा दी, आशिर्वाद दिया और भगवत् भक्तिका वरदान दिया। कौशल्याजी ने राघवेन्द्रसे वरदान लिया और सुमित्राजी ने लक्ष्मणको वरदान दिया। अतः

"सुनु सखि तासु सुमित्रा माता"

सखि! सुनो उन लक्ष्मणकुमार की माता सुमित्रा हैं। यहां "सुमित्रा" शब्द बड़ा ही सार गर्भित है। मित्र शब्द का संस्कृतमें तीनों लिङ्गोंमें पाठ है।

मित्रं, मित्रः और मित्रा।

ये सुमित्रा हैं याने सुन्दर मित्र है, मित्र दो प्रकार के होते हैं एक सुमित्र और दूसरा कुमित्र।

आगें कह मृदु बचन बनाई।
पाछें अनहित मन कुटिलाई॥
जाकर चित अहिगति समभाई।
अस कुमित्र परिहरेहिं भलाई॥

यह कुमित्र के लक्षण है उसका त्याग करना ही उचित है। भरतजी की दृष्टिमें कैकयी कुमित्रा है और लक्ष्मणजी की दृष्टिमें

उनकी माताजी सुमित्रा है। क्योंकि कैकयी कहती हैं कि भरत ! तुम अयोध्या में रहो और राज्य करो।

पर सुमित्राजी कहती हैं कि,

जौ पै राम सीय बन जाहीं।
अवध तुम्हार काज कछु नाहीं॥

इसलिये ये सुमित्रा हैं। वह अपने बेटेको परमपिता परमात्मा के चरणों में लगाती हैं। आश्चर्य यही है कि कौलल्याजी ने रामजी से कुछ लिया, सुमित्राजी ने लक्ष्मण को कुछ दिया पर कैकेयी का इतना विचित्र व्यक्तित्व है कि उन्होंने भरतजी से न कुछ लिया ना ही कुछ दिया। दिया तो केवल व्यथा दी।

अयोध्या में तीनों दिशाओंके रूप में तानों रानियोंकों देखा जाता है। कौशल्याजी के लिये गोस्वामीजी कहते हैं कि,

बन्दउ कौशल्या दिसि प्राची।
कीरति जासु सकल जग माची।

कौशल्याजी प्राची याने पूर्व दिशा हैं और पूर्वकी विरोधिनी पश्चिम दिशा है अतः कैकेयी पश्चिम दिशा है। पूर्वमें सूर्य-चन्द्र उदित होते हैं तो पश्चिम में जा के अस्त हो जाते हैं। उसी तरह पूर्व अर्थात् कौशल्याजी के सानिध्यमें श्रीरामजीके दर्शन होते हैं तो कैकेयी रामजीको बनमें भेज देती हैं। अतः कैकेयी पश्चिम दिशा है। पूर्व दिशासे कोई यदि लगी हुई दिशा हो तो वह उत्तर दिशा है। सूर्य नारायण पूर्व दिशा में उदित अवश्य होते हैं पर समयानुसार उनका रुख दो दिशाओं में जाता है उत्तरायण एवं दक्षिणायन ! कभी आपने सूर्य को पश्चिमायन होते नहीं सुना होगा। इसका भाव यही है कि भगवान् राम पूर्व रूप कौशल्या के समक्ष उदित होते हैं पर वे जब तक अयोध्यामें रहेंगे तब तक उनका रुख ठीक ठीक उत्तर दिशा रूप सुमित्राजी की ओर रहा करता है।

सुमित्राजीका व्यक्तित्व उत्तर दिशा के समान हैं। उत्तर दिशाका अपना अलग महत्व है क्योंकि उत्तर दिशा समस्त

प्रश्नोंका उत्तर है। उसी प्रकार सुमित्राजी सभी प्रश्नोंके उत्तर रूपमें हैं। उत्तर दिशामें ध्रुव तारा रहता है समस्त नक्षत्र मण्डलके भ्रमण करने पर भी ध्रुव तारा अपना स्थान नहीं छोड़ता, ठीक उसी प्रकार सुमित्रा रूप उत्तर दिशा में ध्रुव संकल्परूप लक्ष्मणकुमार बिराजते हैं जो कभी भी रामजीकी सेवासे इधर उधर नहीं होते। यदि लक्ष्मणजी को ध्रुवके सन्दर्भमें देखा जाय तो यह विषय और भी अधिक स्पष्ट हो जायगा।

भागवतकी एक महिलारत्न हैं जिनका नाम है सुनीति और रामायण की एक उच्चकोटिकी महिला हैं जिनका नाम है सुमित्रा दोनों के नाम के पहले "सु" जुड़ा हुआ है। दोनों ही अपनी स्वतन्त्र सत्ता रखती हैं। ध्रुव को उनके पिता उत्तानपाद प्रेम नहीं करते। माना कि दशरथजी लक्ष्मणको चाहते हैं पर प्रेमकी शृंखलामें तो

मोरें भरत - राम दुइ आंखी।

कह रहे हैं लक्ष्मणका नाम वहाँ नहीं आता! पाँच वर्षके ध्रुवको सुनीति ने भगवान्के चरणों में जोड़ा अर्थात् भवनसे भगवान्की सेवामें वन भेजा। किन्तु सुमित्रा अधिक चतुर है वे जानती हैं कि अन्ततः भगवान् के सिवा कहीं शरण हो नहीं हैं तो क्यों न अपने बालकको पहले से ही भगवान् के चरणमें डाला जाय। इसलिये,

बारेहिं तें निज हित पति जानी।
लछिमन राम चरन रति मानी॥

सुमित्राजी जानती हैं कि मित्र किसे कहते हैं।

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं च गूहतिगुणाम् प्रकटी करोति
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,
सन्मित्र लक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः

जो पापों से निवृत करता है तथा जो हित कर्ममें नियुक्त करता है एवं मित्र के गोपनीय दोषों को छिपाकर उसके सद्गुणोंको प्रकट करता है आपत्ति कालमें जो कदापि नहीं छोड़ता एवं समय आने पर प्रचुर सहायता देता है सन्तजन यही श्रेष्ठ मित्रका लक्षण कहते है।

श्रीरामचरितमानसमें भी गोस्वामीजी मित्रके लक्षण बताते हैं,

कुपथ निवारि सुपंथ चलावा।
गुन प्रगटै अवगुनन्हि दुरावा॥
देत लेत मन संक न धरई।
बल अनुमान सदा हित करई॥
बिपति काल कर सतगुन नेहा।
श्रुति कह संत मित्र गुन एहा॥

मित्र का यही लक्षण है कि कुपंथसे हटाकर सुपंथ पर चलाना।

जब लक्ष्मणकुमार बिना रामजी के रोने लगते है तो सुमित्राजी पालनेमें लेटे हुए राघवजी के चरणों के पास लक्ष्मणजी को लिटा देती हैं और राघवजी के अंगुठेको लक्ष्मणजी के मुंहमें डाल देती हैं। धन्य है यह व्यक्तित्व॥ इतनी अच्छी मां जगतमें लक्ष्मणजीके अतिरिक्त किसीको नहीं मिल सकी। सामान्य मातायें तो,

मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं।
उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥

मातायें अपने बेटी-बेटों को वही धर्म सिखाती हैं जिससे पेट पाला जाय। प्रत्येक माँ अपने बच्चोंको महान पद पर देखना चाहती हैं पर सुमित्राजीने सोचा कि संसारके पदको पाकर व्यक्ति पदच्युत हो जाता है अतः मैं अपने बेटे को रामपद दे दूं कि जहां जाकर कोई भी कभी च्युत नहीं हो।

यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परमं मम
(गीता – १५-६)

अतः सुमित्राजी ने अपने बेटे को राम पद दिया जिससे ये कभी भी च्युत नहीं हो सकते, क्योंकि श्रीराम पतितोंको पावन करने वाले हैं जो व्यक्ति प्रारंभसे ही पतितपावन प्रभुके चरणों में चला गया हो वह पतित होगा ही कैसे?

सुमित्राजी कहती हैं कि बेटा! समस्त सुकृतों का फल है श्रीरामके चरणोका प्रेम, पर वह केवल फल ही है बड़ाफल नहीं है तो समस्त सुकृतोंका बड़ाफल क्या है? बोली कि

सकल सुकृत कर बड़फल एहू।
सीय राम पद सहज सनेहू॥

सुनीति ने अपने बेटे ध्रुव को ध्रुव-पद पर बिठाया पर वह भी कल्पान्त में गिरने वाला है किन्तु सुमित्राजी ने अपने बेटे को ऐसे श्रेष्ठ पद पर बिठाया जहां से कोई गिरता नहीं ।

अत: मिथिला नगर की सखियां कहती हैं कि

"सुनु सखि तासु सुमित्रा माता"

प्रत्येक माँ अपने बेटे को नारी से जोड़ना चाहती है किन्तु सुमित्राजी ने अपने बेटे को नारायणसे जोड़ दिया । कोई मां अपने पुत्रको साधु नहीं बनाना चाहती पर सुमित्राजी ने लक्ष्मणकुमारको बन भेज दिया ।

सुनीतिने बन भेजते समय ध्रुव को उपदेश दिया उस उपदेशमें थोड़ासा प्रलोभन दृष्टिगोचर होता है सुनीतिने कहा कि यदि तुम महाराज का सिंधासन चाहते हो तो मंगलमय परमात्माके चरणोंका आश्रय करो । अर्थात् सुनिति का कहना है कि भजन करो यदि तुम्हें लौकिक या अलौकिक सुख चाहिये हो तो । जैसे कोई मां कहती है कि दवा खा लो तो लड्डू मिलेगा । वैसे ही सुनिति का कहना है कि भजन करो तो भोजन मिलेगा परन्तु सुमित्राजी के विचार इससे भी ऊंचे दिखायी देते हैं । वे कहती हैं कि साकेत के सामने निकेतका कोई महत्व नहीं और जहां श्रीसीतारामजी बिराजेंगे वही साकेत है ।

"अवध तहां जहं राम निवासू"

योगेश्वर को पाकर पुन: भोग में लिपट जाना यह अविवेक है और भगवान् के चरण को प्राप्त करने के पश्चात् भवनमें कोई कार्य शेष नहीं ।

जौं पै सीय राम बन जाहीं ।
अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं ॥

इससे लगता यही है कि ध्रुव और लक्ष्मणजीकी सिद्धिमें अन्तर आ गया । सुनीति के द्वारा वन जाते समय ध्रुवको राज्यका प्रलोभन दिया गया अत: ध्रुवके मनमें भगवान्का दर्शन पाकर भी वही वासना बनी रही । तब प्रसन्न होकर भगवान ने कहा,

वेदाहं ते व्यवसितं हृदि राजन्यबालक ।
तत्प्रयच्छामि भद्रं ते दुरापमपि सुव्रत ॥
(श्रीमद्भागवत– ४-९-१९)

हे तपस्वी राजकुमार ! मैं तुम्हारे हृदयका सङ्कल्प जानता हूँ, यद्यपि उस पदका प्राप्त होना बहुत कठिन है तथापि वह तुम्हें मैं देता हूँ ।

आगे प्रभुने यह भी कहा कि सुरुचि का पुत्र उत्तम मृगयामें मारा जायेगा तब उसकी माता पुत्र प्रेममें पागल होकर उसे वनमें खोजती हुई दावानलमें प्रवेश कर जायगी ।

अर्थात् ध्रुवके वरदानमें एक प्रकारका प्रभुका आक्रोश समाया हुआ है उत्तम एवं सुरुचि के मरनेकी बात है । तात्पर्य यही है कि सुनीति अपने उपदेश द्वारा ध्रुव का राग, रोष, ईर्ष्या निर्मूल नहीं कर सकी । यदि राग न होता तो ध्रुवजी राज्य क्यों लेते ? यदि रोष निर्मूल हो गया होता तो वे उत्तम के मृत्यु के वरदान पर आपत्ति करते । यदि इर्षा न होती तो वे सुरुचिके मृत्यु के समाचार से दुःखी हो जाते । परन्तु हृदयस्थ वासना के कारण वे ऐसा नहीं कर सके अतः पश्चात् उन्हें पश्चाताप भी बहुत हुआ ।

किन्तु धन्य है सुमित्राजी ! ! वे लक्ष्मणजी से कहती हैं कि,

राग रोष इरषा मद मोहू ।
जनि सपनेहुं इन्हके बस होहू ॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई ।
मनक्रम बचन करेहु सेवकाई ॥

सुनीति अपने पुत्रको विकारों से मुक्त नहीं करा सकी क्योंकि उसकी केवल नीति ही सुन्दर है पर वहां प्रीतिका सम्बन्ध नहीं है किन्तु सुमित्राजी का सम्बन्ध प्रेम से है ।

सुनीति और सुमित्रा दोनोंने अपने पुत्रको भगवान्में लगाया पर सुनीति मातृत्व नहीं हटा सकी वह भगवानको देकर बेटेको फिर वापस ले रही है किन्तु सुमित्राजी का विचित्र व्यक्तित्व है उन्होंने श्रीरामसे भी कुछ नहीं लिया और लक्ष्मणजीसे भी कुछ नहीं लिया । बल्कि लक्ष्मणजीको भी दिया और राघवेन्द्र सरकार को भी दिया । श्रीराघव भी सुमित्रा को कुछ दे नहीं सकते बल्कि उनके पाससे पाते हैं । सुमित्राजी ने तो लक्ष्मणकुमार को ही रामजी को दे दिया ।

किसी ने रामजी से पूछा कि आप वनवास जाते समय माँ सुमित्राजी से विदा लेने क्यों नहीं जाते हो ?

तब राघवेन्द्रने कहा कि मैं सुमित्राजी के पास कैसे जाऊं? उन्होंने मुझे इतना अधिक प्यार - दुलार दिया है उन्हें मैं क्या दे सकता हूँ? लगता है इसी संकोचवशात् भगवान् राम सुमित्राजी के पास नहीं गये होंगे।

अत: मिथिलावासी सखी कहती है कि रामचन्द्र कौशल्यासुत है और लक्ष्मणजी की माता सुमित्रा है। वहां रामजी की प्रधानता है और यहाँ माता सुमित्रा की।

॥ इति शम् ॥

॥ श्री राघवः शन्तनोतु ॥

॥ श्री राघवोविजयते ॥

द्वितीय कुसुम

नमः परमहंसास्वादित चरणकमलचिन्मकरन्दाय ।
भक्तजनमानसनिवासाय श्रीमद्रामचन्द्राय ॥

योऽन्तः प्रविश्य मम वाचमिमां प्रसुप्तां,
संजीवयत्यखिल शक्तिधरः स्वधाम्ना ।
अन्यांश्च हस्तचरणश्रवणत्वगादीन्,
प्राणान्नमो भगवते पुरुषाय तुभ्यम् ॥

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्गं, सीतासमारोपितवामभागम्
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्

धीरस्वभावा मृदुभाषिणी च,
लावण्यलक्ष्मी ललनाललाम ।
संलालयन्ती शिशुराघवं तं,
काचित् विचित्रा जयता सुमित्रा ॥

नीलतामरस - दाम - रुचि, नरपति ललितललाम ।
निजपदकमले मधुपमिव, रमय मनो मम राम ॥

❀ ❀ ❀ ❀

गौर किसोर बेष वर काछे,
कर सर चाप रामके पाछे ।
लछिमन नाम राम लघु भ्राता,
सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ॥

भगवान्, अकारणकरुणावरुणालय, प्रभु, मर्यादा पुरुषोत्तम, श्रीमद् रामचन्द्रजू की भुवनपावनी कृपा से अब हम श्रीरामकथा मन्दाकिनी में मंगलमय समवगाहन कर अपने जीवन को धन्य बनाने का प्रयत्न करें।

भगवती सुमित्रा कितनी महनीय है ? उनका चरित्र कितना उदात्त है यह तो उनके नाम से ही बहुत अंशों में स्पष्ट होता हैं। विचार करें सुमित्रा शब्द का वास्तविक तात्पर्य क्या है ?

मित्र शब्द का तीनों लिङ्गों में समान्तर रूप से पाठ है यद्यपि प्रायशः "त्रान्तं नपुंसकम्" ऐसा वैयाकरण मानते हैं 'त्र' जिसके अन्त में हो वह नपुंसक होता है। किन्तु,

'लिङ्ग' अशिष्यं लोकाश्रयत्वाल्लिङ्गस्य"

इस पातञ्जल नियम के अनुसार यहाँ पर मित्र शब्द को तीनों लिङ्गों में मानना चाहिये। जैसे "मित्रः सूर्यः" उसी प्रकार मित्रम् और मित्रा भी होता है तो सुमित्राजी जीवकी शोभन मित्र है। सामान्य मित्र जीवको संसार की गलत प्रवृत्तियों में ले जाते हैं किन्तु सुमित्राजी जीवको रघुनाथजी के चरण कमल में जोड़ती हैं। इसलिये मिथिलानियाँ लक्ष्मणकुमार का परिचय देते हुए कहती हैं कि सखि ! सुनो लक्ष्मणकुमार की माताजी सुमित्रा हैं अर्थात् यदि मित्रता की सही परिभाषा देखनी हो तो सुमित्राजी के ही चरित्र में मिल सकती हैं उन्होंने लक्ष्मणकुमार को शैशवावस्था से ही रघुनाथजी के चरण में लगा दिया। लक्ष्मणजी श्रीराम के चरण कमल में ही रति मान रहे हैं।

पौराणिक आख्यानों के अनुसार सुमित्राजी मगध की कन्या हैं और सैद्धान्तिक चर्चा देखते हुए ऐसा लगता है कि महाराज दशरथजी एक ऐसे प्रयाग हैं जहां गंगा, यमुना और सरस्वती इन तीनों का बड़ा मधुर सङ्गम है। जिसमें गंगा के समान भगवती कौशल्या हैं, यमुना के समान भगवती कैकेयी तथा इन दोनों के मध्य में बिराजती हुई गुप्तसलिला सरस्वती के समान भगवती सुमित्रा हैं। सुमित्राजी सरस्वती हैं जो गंगा और यमुना के मध्य में छिपी हुई रहती हैं। जो स्वयं समस्त कार्यों को करती हुई भी अपने को बहुत छिपा कर रखना स्वीकारती हैं। क्योंकि,

तासां क्रियातु कैकेयी सुमित्रोपासनात्मिका।
ज्ञानशक्तिस्तु कौशल्या वेदो दशरथो नृपः॥

वेद रूप दशरथजी हैं एवं क्रियाशक्ति ककयी, उपासनाशक्ति सुमित्रा तथा ज्ञानशक्ति कौशल्याजी हैं।

सुमित्राजी उपासना हैं, उपासना शब्द का अर्थ है उप+आसना–अर्थात् "उपास्यते जीवेन स्थीयते परमात्मनः समीपं यया सा उपासना" उस पद्धति को उपासना कहते हैं जिसके द्वारा जीव परमात्मा के निकट जाकर बैठता है। यहां बहुत स्पष्ट है कि जीव परमात्मा से अलग हो गया है,

जीव जबतें हरितें बिलगान्यो,
तबतें देह गेह निज जान्यो ॥
माया बस रूप बिसरायो,
तेहि भ्रमतें नाना दुःख पायो ॥

जबसे ये परमात्मा से अलग हुआ तब से ही इसने इस शरीर को अपना जान लिया इसे अपना घर बना लिया अपने सच्चे स्वरूप को वह भूल गया उसी बिस्मृत स्वरूप को स्मरण कराती हैं भगवती सुमित्रा।

परमात्मा भूलने योग्य नहीं है फिर भी जीव परमात्मा को भूलता क्यों हैं ?

किसी ने गोस्वामीजी से पूछा कि सबसे बड़ा विधेय कार्य क्या है ?

उन्होंने कहा,

"राम सुमिरन सब विधिहुंको साज रे"

पुनः पूछा गया, कि सबसे बड़ा निषेध क्या है ? तो उत्तर दिया, कि

"रामको बिसारिबो निषेध सिर ताज रे"

श्रीरामजी को भूल जाना यही समस्त निषेधों का शिरमौर्य है।

स्मर्तव्यः सततं विष्णु र्विस्मर्तव्यः न कर्हिचित्
सव विधिनिषेधा स्युरेतयो रेवकिंकरा ॥

भगवान् विष्णु का निरन्तर स्मरण करना चाहिये तथा कभी भी परमेश्वर का विस्मरण नहीं करना चाहिये, सभी विधि एवं निषेध इन्हीं दोनों के दास हैं आशय यह है कि धर्म शास्त्र विहित सभी विधि वाक्यों का महातात्पर्य भगवत् स्मरण में ही पर्यवसित

हो जाना है एवं समस्त निषेध वाक्य भगवत् विस्मरण में हो गतार्थ हो जाते हैं।

यदि भगवान् के नाम का विस्मरण हुआ तो मरण में विष घुल जायगा और यदि संस्मरण होता रहा तो मरण अलंकरण हो जायगा।

जीव परमात्मा को भूल चुका है उस भूले हुए परमात्मा का स्मरण कराना ही सुमित्राजी की भूमिका हैं अतः वह शोभन मित्र हैं।

"तन् मित्रं यत्र विश्वासः"

जहां जीवका विश्वास होता हो उसको मित्र कहते हैं। आपको आश्चर्य होगा कि सुमित्राजी के व्यक्तित्व को देखकर न केवल तुलसीदासजी महाराज किन्तु भगवान् वाल्मीकिजो, कालिदास, पाणिनि सभी नतमस्तक होते हैं भगवान् वाल्मीकि तो कहते हैं कि,

आश्वासयन्ति विविधैश्च वाक्यैर्वाक्योपचारे कुशला नवद्या
रामस्यतां मातरेव मुक्त्वा देवी सुमित्रा बिररामरामा

कितना मधुर व्यक्तित्व है सुमित्राजी का !!

राघवजी जब बन चले जाते हैं तीन दिन बीत गये कौशल्याजी ने जल भी ग्रहण नहीं किया शरीर कृश हो गया है सुमित्राजी ने तीसरे दिन माँ कौशल्या को आग्रह करके सामने दूध का कटोरा उपस्थित किया और आरोगने के लिये प्रार्थना करने लगी तब कौशल्याजी रोने लगी सुमित्रे! आप मुझे दूध आरोगने के लिये कह रही हैं? मेरे राघवेन्द्र को कौन दूध पिलाता होगा? बोली,—

भोरहीं के भूखे होइहैं चले पाव दुखे होइहैं,
प्यासे मुख सूखे होइहैं जागे होइहैं रातके,
सुरुज किरन लागि लाल कुम्हिलाने होइहैं,
कण्ठ लपटाने झगा फाटे होइहैं गातके।
आलि अब भइ सांझ होइहैं कोने बन मांझ,
भइ क्यों न बांझ हिय फाटे क्यों न मातके,
घरके घरौना तजि तरुके तरौना तरे,
सोये होइहैं छौना कै बिछौना कहुँ पातके।

सखि ! प्रातः काल से वे भूखे होंगे उनका मुख सूख गया होगा, उनके शरीर के वस्त्र फट गये होंगे, राजमहल छोड़कर वृक्ष के नीचे कहीं सोये होंगे उन्हें कौन सम्हालता होगा ? ऐसा बार बार कह कर कौशल्या जी व्याकुल होकर रोने लगती हैं तब सुमित्रा जी कहती हैं कि अरे आप उनको सामान्य मानती हैं वे सामान्य नहीं वे तो परब्रह्म परमात्मा है।

सयान मनघं रात्रं पितेष संपरिश्जन् ।
धर्मघ्नःरश्मिभिश्शतै श्चन्द्रमा ह्लादयिष्यति ॥

(वाल्मीकीय रामायण)

वे जब पृथ्वी पर सोये होंगे तब चन्द्रमा अपनी मंगलमय किरणों के द्वारा उनको आह्लाद पहुँचाता होगा,

"न सूर्यस्वंसुभि गात्रं संतापयितुमर्हति"

सूर्य उनके कोमल शरीर को अपनी चण्ड किरणों से सन्तप्त नहीं करेंगे। वायु भी मन्द मन्द बह कर उनकी सेवा करेंगे, क्योंकि वे साधारण नहीं हैं,

सूर्यस्यापि भवेत् सूर्यः ह्यग्नेरग्निः प्रभो प्रभुः
श्रियश्श्च भवेदश्या कीर्त्याकीर्तिः क्षमा क्षमा
दैवतंदैवतानां च भूतानां भूतसत्तमः
तस्य के ह्यगुणा देहि वने वाप्यथवा पुरे ॥

(वाल्मीकीय रामायण)

सुमित्रा जी कहती हैं उतना अच्छा आज तक किसी ने नहीं कहा। कि श्रीराम सूर्य के भी सूर्य हैं अर्थात् वे सूर्य को भी प्रकाशित करने वाले हैं

यदादित्य गतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम् ।
यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नो तत्तेजो विद्धि मामकम् ॥

(गीता १५–११)

सूर्य चन्द्र तथा अग्नि में जो तेज है जो सम्पूर्ण जगत को प्रकाशित करता है भगवान कहते हैं वह तेज मेरा तेज हैं।

सुमित्रा जी कहती हैं वे सूर्य के सूर्य हैं अग्नि के अग्नि प्रभु के

प्रभु एवं काल के भी काल हैं, श्री भी उनके आश्रित रहती हैं वे कीर्ति के कीर्ति, क्षमा के क्षमा एवं दैवत के भी दैवत हैं। चाहे वे वन में रहें या पुर में उनके लिये कोई अन्तर नहीं है, उनके लिये वन भी भवन बन जायगा। सुख की उन्हें खोज नहीं है वे तो स्वयं ही सुख के आगार हैं। समुद्र नदी को नहीं खोजता पर नदी का समुद्र के सिवा कोई गन्तव्य नहीं। वे स्वयं समुद्र हैं सुख जल है जो स्वय ही समुद्र रूप राम के पास जाता हैं अतः भगवान् राम ही सुख, आनन्द एवं समस्त सद्गुणों के आधार है इसलिये उनके लिये किस बात की चिन्ता आप करती हैं ? वे वन में रहें या पुर में।

पुत्रस्ते वरदःक्षिप्रं अयोध्यां पुनरागतः।
पाणिभ्यां मृदुपीनाभ्यां चरणौ पीडयिष्यति ॥
(वाल्मीकीय रामायण)

सुमित्रा जी कौशल्या जी से कहती हैं कि आपके पुत्र परमात्मा श्री राम वरद याने वरदान देने वाले हैं अयोध्या में लौटकर वे आपके चरणों को अपने कोमल विशाल हाथ से दबायेंगे।

सुमित्रा जी जैसे भगवान् का तत्व बहुत कम लोग जानते हैं। कैकयी भगवान राम के सौन्दर्य तत्व की उपासिका हैं कैकयी को राम जी का सौन्दर्य बहुत प्रिय लगता है वह भगवान् की विविध झांकी को निहारना चाहती हैं।

कैकयी को श्रीराम प्राणों से भी प्यारे हैं वह मंथरा से कहती हैं कि

प्रानतें अधिक राम प्रिय मोरे।
तिनके तिलक छोभ कस तोरे ॥

प्राणों से अधिक प्रिय होने पर भी कैकयी ने रामजी को वनवास क्यों दिया ? क्या आवश्यकता हुई वन में भेजने की ?

यहां सूक्ष्मता से विचार करने पर लगता है कि यदि कैकयी राघवजी को प्रेम न करती होती तो मंथरा के मत के अनुसार वे श्रीराम के आजीवन वनवास की घोषणा करतीं।

सुतहि राज रामहिं बनबासू।
देहु लेहु सब सवति हुलासू ॥

मंथरा तो जीवन भर के लिये राघव को वनवास में रखना चाहती थी पर कैकयी को रामजी के ऊपर प्रेम था अतः उन्होंने केवल चौदह वर्ष का ही वनवास माँगा।

यहाँ प्रश्न यह होता है कि उन्होंने वनवास की भूमिका ही क्यों बनाई ?

भावना की दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि कैकयी ने कदाचित् यह सोचा होगा कि भूषण प्रभु के सौन्दर्य को ढक देते हैं बाल्यकाल में भगवान् के सौन्दर्य को ठीक तरह से नहीं देखा जा सका क्योंकि सुमित्राजी इतने अधिक अलङ्कार पहना देती हैं जिससे राघव का श्रीअग दिखाई ही नहीं देता अतः कोई ऐसा समय हो जब ये सभी भूषण निकाल दें। क्योंकि आभूषण भगवान् को नहीं शोभित करते वल्कि भगवान् के श्रीअंग को पाकर आभूषण स्वयं सुशोभित होते हैं। भगवान् स्वयं भूषण भूषणांग हैं। भगवान् के श्रीअंग तो भूषण को भी भूषित करते हैं।

हमारे शरीर को भूषण सुशोभित करते हैं क्योंकि हमारा शरीर पंचमहाभूतात्मक है।

"पंच रचित यह अधम सरीरा"

अतः यह शरीर भी जड़ है और अलंकार भी जड़ हैं। अलंकार में पूर्ण रूप से तेजस तत्व होने के कारण वे हमारे शरीर को कि जिसमें पांचवें हिस्से में तेजस तत्व और अन्य चार हिस्से में अन्य पदार्थ हैं ऐसे शरीर को चमका सकते हैं। परन्तु जो प्रभु परिपूर्णतम-परमात्मा सौन्दर्यनिधि हैं, जो कोटि-कोटि कन्दर्पदर्पदलन हैं उनके सौन्दर्य को भूषण कैसे भूषित कर सकेंगे ? वे स्वयं चेतनघन हैं, उनको ये जड़ अलङ्कार कैसे चमका सकते हैं ? क्योंकि राघवेन्द्र स्वयं ही भूषण हैं ! "जानकीकण्ठ भूषणम्"

मिथिला पक्ष के लोग कहते हैं कि रामचन्द्रजी से भी किशोरी जी अधिक सुन्दर हैं, उसका यही उत्तर है कि आभूषण से ही व्यक्ति की सुन्दरता बढ़ती है, यदि गहने के कारण व्यक्ति सुन्दर लगता है तो जानकीजी के गहने स्वयं श्रीराम हैं अतः सीताजी की सुन्दरता का पूरा-पूरा श्रेय रामजी को ही मिलता है।

दूषन रहित सुमन सम भूषन पाय सुसंगिनी सोहे।
नवराजीव नयन पूरन विधु बदन मदन मन मोहे ॥

यहाँ यह निश्चित हुआ कि भूषण प्रभु को सुशोभित नहीं करते बल्कि वे स्वयं प्रभु के श्रीअग को पाकर भूषित होते हैं। भगवान् स्वयं नीलममणि हैं जैसे नीलम मणि को सोने के अलंकारों में जड़ने से अलंकार की शोभा बढ़ जाती है उसी प्रकार भगवान् आनन्दकन्द के श्रीअंग का संग पाकर आभूषणों की गरिमा बढ़ जाती हैं। ऐसा लगता है कि बड़े बड़े योगिन्द्र मुनिन्द्र महात्मा, अमलात्मा ही प्रभु का अंग संग पाने के लिये अलंकार बन कर आते हैं और वे मां सुमित्रा से प्रार्थना करते हैं कि मां आज हमें प्रभु के शरीर पर धारण कराओ हमें कृतार्थ करो माँ सुमित्रा सबकी सुन्दर मित्र होने के कारण श्रीराघव को बहुत अधिक गहने पहना देती ह। यहां यह कहा जा सकता है कि कौशल्याजी राघव को दुलारती है, सुमित्राजी सवाँरती हैं और कैकयीजी निहारती हैं। कैकयी सौन्दर्य की उपासिका हैं उन्हें राघव की दिव्य झांकी निहारने में बहुत आनन्द आता है उन्होंने सोचा कि जब ये अयोध्या में रहेंगे तो सुमित्राजी मानेगी नहीं इन्हें अधिक गहने पहनायेगी अत: मैं इन्हें बन में भेजूंगी जहाँ वे वल्कल वस्त्र धारण करके वन्यवेष में कितने सुन्दर लगेंगे ! अत: कैकयी ने वरदान मांगा कि,

तापस वेष बिशेष उदासी।
चौदह बरिस राम बनबासी ॥

कैकयी श्रीराम को तपस्वी वेष में देखना चाहती हैं इसलिये लगता है कि यही दिहक्षा ही श्रीराम के वनवास का कारण बनी।

कैकयी भगवान् राम के सौन्दर्य की उपासिका हैं कौशल्याजी माधुर्य की तथा सुमित्राजी प्रभु के ऐश्वर्य की उपासिका हैं, लाला मानती हुई भी वे प्रभु के ऐश्वर्य को कभी भूलतीं नहीं अत: सौन्दर्य दिहक्षावश कैकयी रामजी को वनवास दे सकती हैं, कौशल्याजी माधुर्यातिरेक में आकर दारुन विलाप कर सकती हैं।

दारुन दुसह दाह उर व्यापा।
बरनि न जाय बिलाप कलापा ॥

पर श्रीराम वनवास में भी सुमित्रा जी विलाप नहीं करतीं वह जानती हैं कि रामजी के लिये क्या भवन और क्या वन ? दोनों

समान हैं। किन्तु वे आज एकही बात से खिन्न हैं ?

समुझि सुमित्रां रामसिय रूप सुसील सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥

सुमित्राजी कहती हैं कि अरे इस पापिनी ने बहुत अनर्थ कर दिया अर्थात् श्रीराम को वनवास दिया साथ साथ सभी रानियों के सिन्दूर को छीनना चाहती हैं।

प्रभु की उपासना में सौन्दर्य एवं माधुर्य के साथ होना चाहिये ऐश्वर्य का स्मरण रहना चाहिये। क्योंकि ऐश्वर्य का विस्मरण ही संशय को जन्म देता है। सतीजी भगवान् के ऐश्वर्य को भूल गई तभी उन्हें संशय हुआ। इसलिये भगवान् के ऐश्वर्य को कभी नहीं भूलना चाहिये। ऐश्वर्य ज्ञान के बिना उपासना हो भी नहीं सकती, भाव में माधुर्य पर स्वभाव में ऐश्वर्य होना चाहिये।

भगवान् वाल्मीकिजी ने बताया कि सुमित्राजी को श्रीरामजी के ऐश्वर्य का कितना ज्ञान था। कालीदास भी सुमित्राजी के व्यक्तित्व से इतने ही प्रभावित हैं। उनसे पूछा गया तीनों रानियों में आप सर्व प्रथम किसका नाम देंगे ? उन्होंने कहा मैं सुमित्राजी को सबसे अधिक महत्वशीला मानता हूँ। इसीलिये "रघुवंश महाकाव्य में लिखा,

तमलभन्त पतिं पतिदेवताः शिखरिणामिव सागर मापगाह्।
मगधकोशलकेकयशासिनां, दुहितरोहित रोषितमार्गणम् ॥

अर्थ :—शत्रुओं के ऊपर बाण का संधान करने वाले चक्रवर्ती महाराज दशरथ को मगधराज कन्या सुमित्रा, कोशलराज कन्या भगवती कौशल्या तथा कैकय राजकन्या कैकयी ने उसी प्रकार पति रूप में प्राप्त किया जिस प्रकार पर्वत प्रसूता नदियां समुद्र को प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाती है।

कवि कालिदासजी ने सर्वप्रथम मगध का नाम लिया। यहीं पंक्ति सुमित्राजी के प्रति उनकी श्रेष्ठ भावना का दर्शन कराती हैं। और व्याकरण के प्रबर्त भगवान् पाणिनि को तो सुमित्राजी के प्रति बड़ी आस्था हैं। सामान्यतः सभी व्याकरण शास्त्री जानते होंगे कि 'स्त्री' वाचक शब्द जहां भी होता है वहाँ संतान के अर्थ में 'ढञ' प्रत्यय होकर 'एय बनता है, जैसे अञ्जनी पुत्र को आञ्जनेय कहते हैं यथा,

"नमामि तं प्राञ्जलिराञ्जनेयम्"

और जैसे कौशल्या के पुत्र को कौशल्येय कहते हैं यथा,

"कौशल्येयो दृशौ पातु"

कुन्ती पुत्र को कौन्तेय और द्रौपदी पुत्र को द्रौपदय कहते हैं यथा "सौभद्रो द्रौपदेयाश्च, कोन्तेय प्रति जानिभि"

उसी प्रकार से सुमित्राजी के पुत्र को सौमित्रेय कहना चाहिये परन्तु उन्हें सौमित्रि क्यों कहा जाता है ?

सिय सौमित्रि राम फल खाये ।
तब मुनि आसन दिये सुहाये ॥

भगवान् पाणिनि से पूछा गया कि ऐसा क्यों ? यहाँ सौमित्रेय के बदले सौमित्रि क्यों बना ?

तो उन्होंने बहुत सुन्दर समाधान करते हुए कहा कि स्त्री वाचक शब्द से सन्तान के लिये 'ढय्' प्रत्यय होकर 'एक' होता है। यदि सुमित्रा जी स्त्री होती तो यह नियम उन पर भी लागू होता परन्तु उनका व्यक्तित्व इतना ऊंचा हैं कि उनको स्त्री कहने का मुझमें साहस नहीं। जानकी जी तथा कौशल्या जी की हम विशिष्ट स्त्री वर्ग में गणना कर सकते हैं परन्तु सुमित्रा जी की गिनती स्त्रीयों में नहीं हो सकती। क्योंकि प्रत्येक स्त्री को अपना पुत्र अपने प्राणों से भी प्यारा होता हैं परन्तु सुमित्रा जी एक ऐसी महान् माता हैं जिसने एक नहीं अपने दोनों बेटे प्रभु की सेवा के लिये समर्पित कर दिये। एक बेटा भगवान् की सेवा में दिया तथा दूसरा बेटा भगवान् के भक्त की सेवा में अर्पित कर दिया। इसलिये सुमित्रा जी की गिनती स्त्री में नहीं कर सकते वे महान् है।

सखि यहां एक और विशेष बात देखने को मिलती है कि 'स्त्री' रूप में 'ढय्' प्रत्यय को 'एय्' आदेश होता है। साधारणतया यह प्रत्यय सुनाई नहीं देता परन्तु यहां 'सौमित्रि' शब्द में स्पष्टतया 'इ' सुनाई देता है। सामान्यतः स्त्री को भगवान् के प्रति कितना विश्वास हो सकता है ये जान नहीं सकते सुमित्राजी का रामजी के प्रति कितना अटल विश्वास है इसका एक उदाहरण कृतवास रामायण में मिलता है।

जब श्रीराम लंका पर विजय करके आये तब सुमित्रा जी लक्ष्मण कुमार को मिलने गई।

भेटेउ तनय सुमित्रां रामचरन रति जानी। (मानस)

कृतवास रामायणकार कहते हैं कि जब सुमित्रा जी लक्ष्मण जी को मिली तो उन्होंने देखा कि लक्ष्मण जी की छाती पर मेघनाद की शक्ति का चिन्ह बना था। लक्ष्मण जी की छाती चार जगह से फटी थी जिसे चार जड़ियों से जोड़ा गया सुबल्यकरनी; विशल्यकरनी, अस्थिसंधानी तथा मृतसंजिवनी। चार जड़ियों से जोड़ने पर भी उसके दाग बने हुए थे। सुमित्रा जी ने पूछा कि राघवेन्द्र! लक्ष्मण कुमार की छाती पर ये चार दाग कैसे पड़े हैं? राघवेन्द्र रोने लगे, रोकर कहा, मैया! लक्ष्मण कुमार ने ही मेरे यश की रक्षा की है। मैंने विभीषण को शरण में ले लिया था और मेघनाद ने प्रतिज्ञा की थी राम जी के समक्ष ही मैं विभीषण का वध करूंगा। उसने वज्र समान तेज शक्ति वाली वीरधासिनी शक्ति विभीषण जी के ऊपर छोड़ी तव तक लक्ष्मण जी ने दौड़कर उस शक्ति को अपनी छाती पर झेल लिया उन्होंने कहा कि मैं समाप्त हो जाऊं तो भले हो जाऊं पर अपने रहते ड राखवेन्द्र जी के यशश्चन्द्र में कलंक नहीं लगने दूंगा। यदि वह वीरघातिनी शक्ति विभीषण जी को लगती तो उनके हृदय को चकनाचूर कर देती और लोग कहते कि राम जी ने विभीगण को शरण दी पर वे उनकी रक्षा नहीं कर सके। अत: लक्ष्मण कुमार ने स्वयं वीरघातिनी शक्ति को अपनी छाती पर स्वीकार लिया और छाती के चार टुकड़े हुए, आँजनेय ने जड़ी बूटी लाकर इन्हें प्राणदान दिया परन्तु फिर भी उनके छाती पर घाव के दाग अभी बने हुए हैं।

सुमित्रा जी हंसी और कहा राघव! इसका उपाय मैं जाननी हूँ आपने हनुमान जी को व्यर्थ में ही इतने दूर भेजा जबकी उपाय तो बहुत सरल और आपके पास ही हैं। राघवेन्द्र को आश्चर्य हुआ कि मां कौन से उपाय के तरफ संकेत कर रही हैं?

सुमित्राजी ने राघव का चरण उठाया तथा लक्ष्मण के छाती पर फेरने लगी और कहा कि बस इतना ही उस समय कर दिया होता तो हनुमान को इतने दूर भेजने की आवश्यता हो नहीं होती। कितना द्रढ़ विश्वास है सुमित्राजी का।

जब कि हम देखते हैं कि महाभारत की कुन्ती का भी श्रीकृष्ण के प्रति इतना द्रढ़ विश्वास दृष्टिगोचर नहीं होता।

अर्जुन और कर्ण के संग्राम में युधिष्ठिर अत्यन्त खिन्न एवं उदास हो गये हैं। श्रीकृष्ण ने पूछा कि आप उदास क्यों हो?

युधिष्ठिर ने कहा कि कर्ण के पास एक अमोघ शक्ति है उससे वह अर्जुन का वध करेगा ! तब भगवान श्रीकृष्ण ने कहा कि आप व्यर्थ में चिन्ता कर रहे हैं अर्जुन आपका केवल भ्राता है पर वह मेरा सखा, सम्बन्धी एवं शिष्य भी है, मैं अर्जुन के लिये अपने मांस को काटकर दे सकता हूँ।

तव भ्राता मम सखा सम्बन्धी शिष्य एव च ।
मांसान्युत्कृत्य दास्यामि फाल्गुनार्थं महीयते ॥

इतनी द्रढ़ता से कहने के पश्चात् भी क्या कुन्ती को श्रीकृष्ण के प्रति द्रढ़ विश्वास हैं ?

कुन्ती को यदि विश्वास होता कि भगवान् कृष्ण स्वयं मेरे अर्जुन के रक्षक हैं तो वह कर्ण के पास पांच बाण कि जो परशुराम जी ने दिये थे उन्हें मांगने क्यों जाती ?

अतः यहाँ लगता है कि कुन्ति को इतना विश्वास नहीं है भगवान् पर जितना मां सुमित्रा जी को है ।

माँ कौशल्या राघव को कहती हैं कि बेटा ! जल्दि स्नान करके जो मन भावे वह कुछ मधुर आरोग लो;

तात जाऊं बलि बेगि नहाऊ ।
जौं मन भाव मधुर कछु खाऊ ॥

कौशल्याजी राघव को मधुर वस्तु आरोगने के लिये आग्रह करती हैं किन्तु सुमित्राजी लक्ष्मणकुमार को मधुर वस्तु खिलाना नहीं चाहती वे सोचती हैं कि अब अयोध्या में मधुर वस्तु रही ही कहां ? अतः वे मधुर राम नाम के मोदक लक्ष्मण को खिलाना चाहती हैं,

राम नाम मोदक सनेह सुधा पागिहैं
पाइ परितोष तूं ना द्वार द्वार बागिहैं

(विनय पत्रिका)

सुमित्राजी ने सोचा कि इनको मैं क्या मधुर खिलाऊँ ? इनको तो मैं स्वयं मधुर के पास ही भेज रही हूँ ।

मधुर मधुर मेतन मङ्गलं मङ्गलानाम्

श्रीरामजी ही समस्त मंगलों के मंगल तथा मधुरता की खान हैं। तो मंगल भवन के चरणों में जाकर क्या लक्ष्मणजी के जीवन में कभी अमंगल आ सकता है?

इसलिये यह कहना पड़ेगा कि सुमित्राजी के व्यक्तित्व के सामने आदि कवि महर्षि वाल्मीकिजी, महाकवि कालिदासजी, कविकुल तिलक गोस्वामी तुलसीदासजी सभी नतमस्तक हो जाते हैं, और पाणिनिजी तो प्रणत होने के अतिरिक्त कुछ भी नहीं कहना चाहते उनको स्त्रियों में गिनती नहीं करने और उनके लिये अलग से सूत्र बनाते हैं "बाह्वादि भ्यश्च"

सुमित्रा शब्द को बाह्वादि गण में पठित कर भगवान् पाणिनि ने ढञ् प्रत्यय के स्थान पर "इ" प्रत्यय का विधान करके उन्हें कण्ठखेण समस्त स्त्रियों की मान्यता से पृथक ही निर्दिष्ट कर दिया। अतः सुमित्राजी के बेटे का नाम सौभित्रेय के बदले सौमित्रि रखा गया। इससे यह सिद्ध हुआ कि सुमित्राजी का व्यक्तित्व विश्व की किसी भी स्त्री से मिलता जुलता सामान्य नहीं हैं।

॥ इति शम् ॥

॥ श्री राघवः शन्तनोतु ॥

॥ श्री राघवोविजयतेतराम् ॥

तृतीय कुसुम

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्ग, सीतासमारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायक चारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ॥

वात्सल्यामृतसन्दोह सिन्धुं मोहविवर्जिताम् ।
राघवेन्द्रार्चितां देवीं सुमित्रां तामुपास्महे ॥

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च
पतितानां पावनेभ्यो श्री वैष्णवेभ्यो नमो नमः

श्रीसीतानाथसमारम्भां श्रीरामनन्दार्यमध्यमाम् ।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे श्री गुरु-परम्परान्

श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि ।
बरनौ रघुबर विमल जस जो दायक फलचारि ॥

— ० —

गौर किसोर वेष बर काछे ।
कर सर चाप राम के पाछे ॥
लछिमन नाम राम लघु भ्राता ।
सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ॥

परम पुराणपुरुषोत्तम, प्रभु, जगदीश्वर, सर्वशरण्य, जगदाधार, सर्वनियन्ता, प्रणतपाल, परमकृपालु, प्रपन्नपारिजात, वारिजातनयन, अशरणशरण, कलितकोमलचरण भवभयहरण, श्रीमन्मैथिलीहृदयाभरण भगवान् श्री रामभद्रजू की भुबनपावनी कृपा के परमपरिपाकस्वरूप सहज प्राप्य श्रीरामकथा भागीरथी में निमज्जन करने का अब हम और आप सामुहिक प्रयास करें ।

सुमित्राजी की मंगलमयी प्रशस्ति में मिथिला की सीमन्तिनियाँ एक बहुत ही मधुर चौपाई का उद्घाटन करती हैं । वाच्य की प्रशस्ति का कितना महत्व होगा या जिसके विषय में हम कुछ कहना चाहते हैं वह कितना महत्वपूर्ण है इसका अनुमान वक्ता से लगाया जाता है । अर्वाचीन दृष्टिकोण में तो यह नियम है

" ननु वक्तृविशेषनिस्पृहा गुणगृह्या वचने विपश्चितः "

विद्वान लोग वक्तृत्व में निस्पृह होते हैं ।

एक उच्चकोटि का वक्ता भी यदि अपलाप करता है तो उसका प्रभाव नहीं पड़ता, यदि बालक भी सुन्दर बात कह रहा हो तो उसकी बात ग्रहण करने योग्य होती है।

"बालादपि सुभाषितं ग्राह्यम्"

किन्तु यह नियम सामान्य है वस्तु तस्तु हमारे यहां आप्तों के वाक्य प्रमाण माने जाते हैं "आप्त वाक्य प्रमाणम्" अतः न्याय के शब्द खण्ड की स्पष्ट व्याख्या में आप्तों के द्वारा उच्चरित शब्द ही प्रमाण माने जायेंगे। उसी 'आप्त' का अपभ्रंश आप' बन गया। 'आप्त' का अर्थ मंजूषाकार कहते हैं कि,

" यः रागादिवशादपि नान्यथावादी सः आप्तः "

अर्थात् रागवश होकर भी जो अन्यथा नहीं बोलता उसे आप्त कहते हैं।

चरक में भगवान् पतञ्जली कहते हैं,

रजसतमोभ्यां निर्मुक्तां नित्यं ज्ञानबलेन ये।
येषां त्रिकालममलं ज्ञानमव्याहृतं सदा ॥
आप्ता शिष्टाः विबुध्यास्ते तेषां वाक्यमसंशयम।
सत्यं वक्ष्यन्ति ते कस्मादसत्यं निरजस्तमाः॥

जो अपने नित्य ज्ञान के बल से, रजोगुण से या तमोगुण से निर्मुक्त हैं, जिनका तीनों काल में निर्मल ज्ञान स्थिर रहता है

अर्थात् किसी भी दोष से जिनका ज्ञान ढकता नहीं, जिनके ज्ञान को काम व अज्ञान भी रुंध नहीं सकते वही आप्त है वही शिष्ट एवं बिबुद्ध है। उनके वाक्य में कोई संशय नहीं होता, वे सत्य बोलते हैं।

मिथिला के लोग आप्त हैं वे रजोगुण और तमोगुण से रहित हैं। आप्तों का वाक्य प्रमाणभूत माना जाता है ये आप्त नारियां जिस महिला ललाम की प्रशंसा कर रही हों वह सामान्य नहीं हो सकती क्योंकि वाच्य की गुरुता का अनुमान वक्ता से लगाया जाता है।

रामायणजी में एक चौपाई अत्यन्त चर्चास्पद हो गई हैं इसी चौपाई के ऊपर माताएं बहुत अप्रसन्न होती हैं,

ढोल गवांर सूद्र पसु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी।।

माताएं कहती हैं कि गोस्वामीजी ने नारी को ताड़ने के लिये कहा है, अभी हम इसका अर्थ नहीं कर रहे हैं परन्तु इसका अर्थ करने के पहले हमे यह देखना चाहिये कि इस पंक्ति को कौन बोल रहा है, इसका वक्ता कौन है। वक्ता का बड़ा महत्व है "वाक्यं वक्त्रधीनम्" वक्ता के अधीन वाक्य होता है, जैसे रावण रामजी के लिये कहता है कि,

आजु करौं खल काल हवाले।
परेउ कठिन रावन के पाले।।

तो क्या रावण के कहने से रामजी खल हो गये? जैसे रावण के वाक्य का प्रामाण्य नहीं है क्योंकि रावण स्वयं खल है। उसी प्रकार उपर्युक्त पंक्ति समुद्र बोल रहा है और समुद्र जड़ है यथा,

विनय न मानत जलधि जड, गये तीन दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु, होय न प्रीति।।

अत: जड़ के वाक्य का कोई प्रमाण्य नहीं इसलिये यहाँ महिलाओं को नाराज नहीं होना चाहिये।

इस प्रकार वचन का प्रभाव वक्ता के ऊपर आधार रखता है। वेद क्यों प्रामाणिक हैं क्योंकि वेद के वक्ता स्वयं भगवान् हैं,

"जाकी सहज स्वास श्रुति चारी"

उसी प्रकार मानस के भी चारों वक्ता आप्त हैं अत: मानस भी प्रामाणिक है। इसी मानस में आज मिथिलानियाँ लक्ष्मणकुमार का परिचय देती हुई माँ सुमित्रा की प्रशंसा कर रही हैं। यह मिथिलानियां स्वयं आठों प्रकृतियाँ हैं। इन आठों सखियों में से यह आकाश प्रकृति रूप सखी बोल रही है,

कोऊ सप्रम बोलि मृदु बानी।
जो मैं सुना सो सुनहु सयानी॥
ए दोउ दशरथ के ढोटा।
बाल मरालन के कल जोटा॥
मुनि कौसिक मख के रखवारे।
जे रन अजिर निसाचर मारे॥

यह आकाश प्रकृति अत्यन्त गंभीर है,

यथा सर्वगतं सौक्ष्म्यात् आकाशं नोपलिप्यते।
(गीता-१३-३२)

गीताकार कहते हैं कि आकाश कभी लिप्त नहीं होता, उसी प्रकार से आकाश प्रकृतिवाली सखी भी किसी से लिप्त नहीं होती वह एकदम निर्लिप्त भाव से सत्य पक्ष लेकर बोलती है और कहती है कि सखि ! सुनो यह श्रवणीय है कि रामजी तो कौशल्या के पुत्र हैं पर लक्ष्मणजी की माता सुमित्रा हैं। अर्थात् धन्य है सुमित्रा कि जिन्होंने अपने पुत्र को समस्त संसार के मित्र प्रभु के चरणों में समर्पित कर दिया।

प्रायः "मोह न नारि नारी के रूपा" स्त्री के रूप या गुण पर मोहित नहीं होती नारी नारी की प्रशंसा भी नहीं करती। किन्तु आज धन्य है सुमित्रा कि जिनकी प्रशंसा मिथिला की नारी कर रही है, (गीत)

देखो सखि देवी सुमित्रा को भाग।
मन क्रम बचन छांडि छल सन्तत, किये हरिपद अनुराग॥
अवधराज महिषी उदार मति, सुन्दर अंग विभाग।
राजभोग महं उदासीन मन, रामचरन मंह लाग॥१॥
लखन शत्रुसूदन सुन्दर सुत संजम व्रत तप जाग।
भगत और भगवन्त चरन रत, जेहि किये तनय विराग॥२॥
सदा करति मज्जन रघुबर के, पावन प्रेम प्रयाग।
भूरि भाग 'गिरिधर' चित हुलसत, लखनजननी को त्याग॥३॥

सुमित्राजी के दो दो असाधारण पुत्र हैं लक्ष्मण और शत्रुघ्न। एक साक्षात मूर्तिमान वैराग्य हैं तो दूसरे साक्षात् मूर्तिमान त्याग। किन्तु गोद लेने के प्रसंग में इस महान् परिवार की महत्ता का दर्शन होता है, गोस्वामीजी वर्णन करते हैं,

राम सिसु गोद महा मोद भरे दशरथ
कौशिलाहु ललकि लखनलाल लये हैं
भरतु सुमित्रा लये कैकयी सत्रुसमन
तन प्रेम पुलक मगन मन भये हैं

(गीतावली १-११)

रामलाला को महाराजा ने अपने गोद में लिया है कौशल्याजी ने लपककर लखनलाल को अपने अंक में उठा लिया, सुमित्राजी यदि चाहती तो वे अपने दूसरे बेटे शत्रुघ्न को गोद में ले सकतीं परन्तु सुमित्राजी ऐसा नहीं करती वे तुरन्त ही भरतजी को गोद में ले लेती हैं और कैकयी शत्रुसूदन को अंक में बिठा लेती हैं।

सुमित्राजी का व्यक्तित्व ऊंचा है वे अपने पुत्रों के ऊपर ममत्व इस लिये नहीं रखती कि वह जानती हैं कि यदि मैं इन पर ममत्व करूंगी तो रघुनाथजी ममत्व नहीं रखेंगे क्योंकि संसार वाले जब तक ये मेरा है ये मेरा है मम-मम कहते हैं तब तक प्रभु उसे अपनाते नहीं। अतः आज सुमित्राजी ने भरत भद्र को गोद में उठा लिया है यह दृश्य देखकर लगता है कि माँ सुमित्रा के पास से चारों भ्राताओं को कुछ न कुछ मिला ही है। रामजी को दुलार मिला, गोस्वामीजी कहते हैं,

चाहि चुचुकारि चूमि लालत लावत उर
तैसे फल पावत जैसे सुबीज बये हैं

(गीतावली १-११)

वे रामलाला को बारबार चुचकारती हैं, चूमति हैं हृदय से लगा लेती हैं जैसा सुबीज उन्होंने बोया है उसका सुन्दर फल प्राप्त कर रही हैं।

जैसे रामजी ने माँ सुमित्रा से दुलार, लाड़, प्यार पाया उसी प्रकार भरतजी ने भी मां सुमित्रा से ही भक्तिसार सर्वस्व प्राप्त किया। भरतजी के जीवन में तीन माताओं का योगदान रहा। सुमित्राजी ने भरतजी को गोद में लेकर उनके हृदय में भक्ति का बीज बोया, माँ कौशल्या ने उस भक्ति बीज को अपने आँसुओ के जल से सींचा तथा माँ जानकीजी ने उसमें मंगलमय परमप्रेमरूप फल लगा दिया। इस प्रकार तीनों माताओं ने

भरतजी के जीवन में व्यक्तित्व का सर्जन किया। इसे हम इस प्रकार कह सकते हैं कि 'भरत' शब्द के 'भ' को सुमित्राजी ने भाव से जाग्रत किया 'र' अर्थात् रस को प्रकट किया कौशल्याजी ने और 'त' याने रामप्रेमतत्व को प्रदान किया माँ मैथिलीजू ने।

कौशल्याजी चाहती हैं कि रामलाला जल्दि बड़े हो जायें। उन्हें चिन्ता है कि ये कब बड़े होंगे? "ह्वै हौ लाल कबहिं बड़े बलि मैया।" रामलाला ने कहा कि मां मैं क्या करूं? आप हीं ने तो मुझे कहा था कि,

कीजै सिसुलिला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।

इसलिये आपके ही निर्देशानुसार मैं शिशुलीला कर रहा हूँ। अत: लाला न तो बड़े होते हैं और न ही चलते हैं। सुमित्राजी को बड़ी चिन्ता होने लगी उन्होंने सोचा ये चलेंगे नहीं तो रावण को कैसे मार सकेंगे? और रावण नहीं मरेगा तो भूमि का भार दूर कैसे होगा? अत: सुमित्राजी लाला को मनाती हैं,

पगनि कब चलिहौ चारौ भैया?
प्रेम-पुलकि उर लाइ सुवन सब कहति सुमित्रा मैया॥

(गीतावली बाल० ६)

प्रेम पुलकित हो बालकों को हृदय से लगाकर मां सुमित्रा कहती हैं तुम चारों भैया कब पैरों चलोगे? मां की इच्छा देख कर राघव चलने लगे पहले घुटनों से चलते हैं "जानु पानि बिचरनि मोहि भाई" कभी कभी बछड़े की भाँति चलते हैं यह मधुर दृश्य देखकर मां सुमित्रा कहती हैं कि,

ललन लोने लेरुआ बलि मैया।
सुख सोइए नींद बेरिया भई, चारु-चरित चारयौ भैया॥१॥

(गीतावली बाल.-२०)

कितने मधुर कितने सुन्दर वात्सल्य भरे सम्बोधन हैं लाला के लिये ये सम्बोधन। ये प्रभु के नाम किसी शब्दकोष में नहीं मिलेंगे। विष्णुसहस्रनामकार भी चकित हो गये इन विशेषणों को सुनकर, ऐसे नाम तो कहीं भी नहीं सुने गये ये तो माता ही कह सकती हैं। कितने वात्सल्यभावयुक्त नाम है ललन, लोने,

लेरुआ। लेरुआ का अर्थ होता है गाय का बछड़ा। भगवान् सोचने लगे अब तक इनकी प्रार्थना से मैं मनुष्य बन गया, शिशु बन गया पर अब मैया तो मुझे लेरुआ याने गाय का बछड़ा कह रही हैं। भगवान् ने कहा, मैया! तुम जो कहोगी वह प्रत्येक बात मैं मानने को तैयार हूँ परन्तु अवध में तो मैं लेरुआ नहीं बनूँगा क्योंकि यहां कोई चरानेवाला नहीं है, इसलिये यदि आपकी ऐसी इच्छा ही है तो कृष्णावतार में मैं गाय का बछड़ा भी बनूँगा! सुमित्राजी ने कहा, मैं कैसे देखूंगी, भगवान् ने कहा आप रोहिणी मां बनेंगी। ऐसा ही हुआ, कृष्णावतार में जब ब्रह्माजी बछड़ो को तथा गोप-बालकों को चुरा ले गये तब प्रभु बछड़े भी बन गये, मां सुमित्रा की इच्छा से भगवान् बछड़े बने।

ततः कृष्णो मुदङ्कर्तुं तन्मात्रीणां च कस्य च
उभयायित मात्मानं चक्रे विश्व कृदीश्वरः

(श्रीमद्भागवत १०/१३)

भक्त जैसी भावना करते हैं भगवान् उसी प्रकार के बन जाते हैं वैसी ही क्रिया करते हैं, सुमित्राजी कहती हैं कि आप थक गये होंगे अब सो जाइये।

कहति मल्हाइ लाइ उर छिनछिन, छगन छबीले छोटे छैया।

गोस्वामीजी ने 'अनुप्रास' की झड़ी लगा दी। माँ लाला को 'छगन' कह रही हैं। छगन याने षड्गुण सम्पन्न। भगवान् निर्गुण नहीं है वे तो छः गुणों से सम्पन्न हैं,

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षडणां भग इतीरणा॥
ज्ञानशक्तिबलैश्वयतेजोवीर्याण्यशेषत्तः
भगवच्छब्दवाच्यानि विना हेयादिभिर्गुणैः

जिसमें अखण्ड ऐश्वर्य, अखण्ड धर्म, अखण्ड यश, अखण्ड श्री, अखण्ड ज्ञान एवं अखण्ड वैराग्य ये छहों गुण नित्य रूप से निरन्तर विद्यमान रहते हैं उसी नित्य मुक्त परब्रह्म परमात्मा को भगवान् कहते हैं। अथवा हेय दुर्गुणों के अतिरिक्त जिसमें अशेष रूप से ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, तेज एवं वीर्य नित्य बिराजमान रहते हैं उसी निरस्त सकल हेय प्रत्यनीक दुर्गुण सकलकल्याण, गुण-गण निलय, सर्व शक्तिमान परमेश्वर को शास्त्रों में भगवान् शब्द से व्यवहित किया गया है।

भगवान शब्द की इन दो व्याख्याओं के अतिरिक्त एक तीसरी भी व्याख्या प्रस्तुत की जा सकती है यथा

एक कालावच्छेदेन एक संसर्गावच्छेदेन एकाधिकरणता वच्छेदेन सकलविरुद्धधर्माश्रयतावच्छेदकत्वम् भगवत्वम् ।

अर्थात् एक ही काल में एक ही सम्बन्ध से एकाधिकरणता द्वारा जो समस्त विरुद्ध धर्मों के आश्रय को ही भगवान् कहते हैं ।

निर्विशेष ब्रह्म में हमें कोई प्रमाण नहीं मिलता ।

निर्विशेषे ब्रह्मणि न किमपि प्रमाणमुपलभामहे ।
सर्वेषामपि शास्त्राणां सविशेषविषयत्वात् ।।

ब्रह्म निर्विशेष नहीं है यहां तो विशेष ही विशेष है सकल विशेषण प्रभु में ही बिराजते हैं ।

"अनन्ताश्च विशेषाः" विशेषों की कोई संख्या नहीं अतः अनन्त अनन्त विशेषण प्रभु में रहते हैं । यदि ब्रह्म निर्विशेष है तो तत्प्रतिपादक वेद किसलिये हैं ?

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् ।
आदित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।।

इसमें 'महान्तम्' 'आदित्यवर्ण' ये सब विशेषण भगवान् के ही हैं तो ब्रह्म निर्विशेष कैसे ?

सुमित्राजी कहती हैं कि आप छः गुण सम्पन्न सगुण हो । भगवान् का एक गुण है "भक्तपारतन्त्र्य" याने भक्त जैसा कहेंगे वैसा प्रभु करते हैं भक्त कहते हैं 'सो जाइये' तो प्रभु सो जाते हैं, जगाते हैं तो जग जाते हैं आरोगने के लिये कहते हैं तो आरोग लेते हैं ।

इस प्रकार मां सुमित्रा लाला को दुलारती हैं, संवारती हैं सजाती हैं लाड़-प्यार करती हैं सम्पूर्ण परिचारिका का भार मां सुमित्रा ने ले रखा है । अतः मिथिला की नारियां इनके गुणगान गाती हुई थकती नहीं ।

लछिमन नाम राम लघु भ्राता ।
सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ।।

।। इति शम् ।।

।। श्री राघवो शन्तनोतु ।।

॥ श्री राघवोविजयते ॥

चतुर्थ कुसुम

निःसर्गनीलोत्पलमञ्जुलच्छबिम्,
भवार्चितं भक्तसरोरुहारविम् ।
जनार्दनं जैत्र जगत्पू प्रपूजितम्,
नमामि रामं जनकात्मजापतिम् ॥१॥

निसिंचन्ती सान्द्रं सरसलकलभावं हि सुधया।
क्षुधं वै धुन्वन्ती सुरधुनिरिवामोघविभवा।
भवाभव्या नव्या रघुवरमुखाम्भोजमधुपा।
सुमित्रा सा चित्रा गुणगणविचित्रा विजयते ॥

विजयते जयते जयतां वरः, विजयते जयते जयतां वरः।
विजयते जयते जयतां वरो विजयते जयते जयतां वरः।
वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च

सीतारामगुणग्राम पुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कविश्वरौ कपिश्वरौ ॥

धूलिविधूसर-देह-रुचि विजिततामरसदाम।
गिरिधरहृदिसदने विहर हरहृदिभूषणराम ॥

श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि।
बरनउ रघुवर बिमल जसु जो दायक फल चारि ॥

❀ ❀ ❀ ❀

गौर किसोर बेष वर काछे,
कर सर चाप रामके पाछे।
लछिमन नाम राम लघु भ्राता,
सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ॥

अब हम भगवान्, आनन्दकन्द करुणावरुणालय, भक्तवत्सल, परमात्मा, रघुकुलभूषण, विजितखरदूषण, सच्चिदानन्दघन, कौशल्यानन्दवर्धन प्रभु श्रीमद् रामभद्रजू की परमपावनी कथा सुधा की कुछ सीकरों का आस्वाद लेने का प्रयास कर रहे हैं।

मिथिलानियाँ अपने भवन के झरोखों से राघवेन्द्र एवं लक्ष्मण-भद्र को निहार रही हैं। इतिहास की धारा में कुछ उलट सा गया। आज तक साकेत में रहकर श्रीराम ही झरोखों से सबको झांका करते थे संत कहा करते हैं कि,

राम झरूखे बैठ कर, सबका मुजरा लेत।
जैसी जाकी चाकरी, तैसो ताको देत॥

पर आज इस तथ्य को मिथिलानियों ने पलट दिया आज वे स्वयं झरोखों में बैठ कर रामजी को निहार रही हैं और दोनों भाइयों का परिचय दे रही हैं लक्ष्मणजी के परिचय में उनका परिचय गौण हो जाता है और उनकी माताजी का परिचय विशेष हो जाता है इतिहास में इनकी जो रामानुज शब्द से प्रसिद्धि हुई उसके मूल में केवल सुमित्राजी का ही व्यक्तित्व कारण है क्योंकि वही माता होती हैं जो अपने पुत्र को जगत के वास्तविक माता-पिता के चरणों में लगा दे।

प्रारंभ से ही सुमित्रजी का व्यक्तित्व विलक्षण लगता है। महाराजा दशरथजी के महल में वे एक साम्राज्ञी के रूप में हैं, लौकिक दृष्टि से दशरथजी के साथ उनका विशेष सम्पर्क नहीं दिखाई देता पर प्रसंग को देखने पर लगता है कि चक्रवर्तीजी कौशल्या एवं कैकयी इन दोनों महारानियों की अपेक्षा सुमित्राजी को अधिक प्रसन्न करना चाहते हैं इसलिये हविष्य के वितरण में,

अर्ध भाग कौशल्यहि दीन्हा।
उभय भाग आधे कर कीन्हा॥
कैकई कहं नृप सो दयऊ।
रह्यो सो उभय भाग पुनि भयऊ॥
कौशल्या कैकई हाथ धरि।
दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि॥

हविष्य का आधा भाग याने आठ आनी भाग कौशल्याजी को दिया गया, उसके बाद जो आठ आनी आधा भाग रहा उसके पुनः दो भाग किये गये याने चार-चार आनी भाग हुए उसमें से एक चार आनी भाग कैकयी को दिया गया, अब जो चारआनी भाग शेष था उसके पुनः दो भाग किये गये और उन्हीं दो भागों को कौशल्या एवं कंकयी के हाथों से सुमित्रा को दिया गया। अर्थात् जिनका सन्मान

महाराजा के द्वारा किया गया था उन्हीं सन्मानीत दो व्यक्तियों के द्वारा सुमित्राजी का सन्मान किया गया अतः सुमित्राजी का महत्व विशेष हो गया। सुमित्राजी का भाग्य दोनों महारानियों की अपेक्षा बड़ा हुआ उन्हें दो भाग प्राप्त हुए सुमित्राजी ने निश्चय किया कौशल्या के द्वारा जो हवि प्राप्त हुआ हैं उससे जो बालक होगा उसे मैं कौशल्या के पुत्र की सेवा में अर्पण कर दूंगी और कैकयी के द्वारा जो प्रसाद प्राप्त हुआ है उससे जो बालक होगा उसे मैं कैकयी के पुत्र की सेवा में समर्पित करूंगी ! धन्य है सुमित्रा ! कि जिन्होंने अपने दोनों पुत्रों को भाइयों की सेवा में जोड़ दिया।

आध्यात्मिक दृष्टि से हवि वितरण का यही तात्पर्य है कि महाराजा दशरथ सुमित्रा को प्रसन्न करने के लिये कौशल्या एवं कैकयी के हाथों से सुमित्रा के हवि दिलवा रहे हैं अर्थात् सुमित्राजी उपासना हैं और उपासना की दोनों को अपेक्षा है ज्ञान की भी एवं कर्म की भी। यदि ज्ञान में उपासना न हो तो अज्ञान होने का भय रहता है उसी प्रकार कर्म में यदि उपासना न हो तो कर्म विकर्म बन जाता है,

सो सुख करम धरम जरि जाऊ।
जहं न राम पद पंकज भाऊ॥
जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू।
जहं नहिं राम प्रेम परिधानू॥

वह सुख, कर्म, धर्म जल जाय जहाँ राघव के चरणों में भाव नहीं है। वह योग कुयोग है वह ज्ञान अज्ञान है जहाँ रामजी के चरणों में प्रेम का प्राधान्य नहीं है।

अतः यदि कैकयी क्रिया रूपिणी है तो क्रिया की सत्ता को शाश्वत रखने के लिये उपासना रूपिणी सुमित्रा की अपेक्षा है और कौशल्याजी ज्ञानशक्ति हैं उस ज्ञान में अज्ञान न आ जाय इसलिये उपासनारूप सुमित्राजी की वहां भी आवश्यकता है। सत्य ही है कि सुमित्रा के बिना कौशल्या एवं कैकयी दोनों का व्यक्तित्व अपूर्ण है, क्योंकि कौशल्याजी के मूर्तिमान व्यक्तित्व के रूप में श्रीराम प्रकट हुए और रामजी जहां होंगे वहां लक्ष्मणजी को होना ही है क्योंकि

रघुपति कीरति बिमल पताका।
दंड समान भयेऊ जस जाका॥

श्रीरामजी की कीर्ति रूपिणी पताका को फहराने के लिये लक्ष्मणकुमार का व्यक्तित्व दंड के समान है। अतः यह निश्चित है कि कौशल्याजी के व्यक्तित्व रूप श्रीमद् रामजी की शोभनता लक्ष्मण के बिना संभव नहीं जैसे दंड के बिना पताका उठती नहीं।

उसी प्रकार से कैकयी के मूर्तिमान व्यक्तित्व रूप भरतजी का कार्यकलाप, शत्रुघ्न के बिना अपूर्ण है! चौदह वर्ष तक भरतजी नन्दीग्राम में तपश्चर्या करते रहें और पूरा राज्यभार शत्रुघ्न ने ही वहन किया था शत्रुघ्न की सेवा से भरतजी के व्यक्तित्व में चार चांद लग गये।

ज्ञानशक्ति कौशल्या ने मोक्षरूप रामजी को प्रकट किया और क्रियाशक्ति रूप कैकयी ने कामरूप भरतभद्रको प्रगट किया तथा उपासना शक्ति रूप सुमित्रा ने धर्मरूप लक्ष्मण एवं अर्थरूप शत्रुघ्न को अवतरित किया। यहाँ बताया गया कि भरतजी काम है, यहाँ काम का अर्थ वासना नहीं अपितु अभीष्टवस्तु की प्राप्ति को ही काम रूप में स्वीकारा गया।

जिन वक्ताओं को संस्कृत वांग्मय का ज्ञान न हो वे थोड़े गड़बड़ा जाते हैं वे कहते हैं कि लक्ष्मणजी काम है यदि लक्ष्मण को काम कहें तो उधर मेघनाद भी काम है,

'पाकारिजित काम विश्राम हारी'

(विनय पत्रिका–५८)

जब गाड़ी फंसने लगी तब उन्होंने एक युक्ति लगाई कि लक्ष्मण योगक्रिया सम्पन्न काम है और मेघनाद भोगक्रिया सम्पन्न काम है पर उन लोगों को समझावे कैसे? कि यदि योग क्रिया सम्पन्न हुई तो काम रहेगा हीकैसे?

अतः यहाँ उस वासनात्मक काम की चर्चा नहीं है जिसको भगवान् भूतभावन शंकरजी ने जलाया वह काम तो विकार है और हम जिस काम की चर्चा कर रहे हैं वह काम पुरुषार्थ है अर्थ, धर्म काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ हैं।

यहाँ काम और मोक्ष दो साध्य है तथा अर्थ और धर्म ये दो साधन है। अर्थ का साध्य है काम तथा धर्म का साध्य है मोक्ष। और परमार्थतः अर्थ, धर्म और काम इन तीनों का साध्य है मोक्ष। वैसे ही अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष इन चारों का साध्य है भक्ति। यथा,

सखा परम परमारथ एहू ।
मन क्रम बचन रामपद नेहू ॥

यहां शत्रुघ्नकुमार अर्थ है तथा लक्ष्मणजी धर्म,

संग सुबन्धु पुनीत क्रिया मानो धर्म क्रिया धरे देह सुहाई
(कवितावली अयोध्या० १)

भरतजी काम हैं तथा राघवेन्द्र मोक्ष। जिस प्रकार अर्थ के साध्य है काम उसी प्रकार शत्रुघ्नकुमार के साध्य भरतजी है और जैसे धर्म का साध्य मोक्ष है वैसे ही लक्ष्मणजो के साध्य श्रीराम हैं अर्थ, धर्म काम रूप इन तीनों भ्राताओं के साध्य मोक्ष रूप भगवान् राम हैं और इन चारों का साध्य राजराजेश्वरी, त्रिपुरसुन्दरी, जनकनन्दिनी भगवती श्री सीता महारानीजी है ।

धर्म रूप लक्ष्मणजी की गन्तव्य सीताजी हैं,

तात तुम्हारी मातु बैदेही ॥

अर्थ रूप शत्रुघ्नजी तो सीताजी के चरणारविन्द की धूलि को लाल श्री बनाकर अपने भाल पर लगाते हैं और काम रूप भरतजी सीताजी के चरण कमल का पराग मस्तक पर चढ़ाते हैं,

सानुज भरत उमगि अनुरागा ।
धरि सिर सिय पद पदुम परागा ॥

ठीक इसी प्रकार मोक्ष रूप श्रीराम भी सीताजी को ही साध्य मानकर उनका आदर करते हैं ।

एक बार चुनि कुसम सुहाये ।
निज कर भूषन राम बनाये ॥
सीतहिं पहिराये प्रभु सादर ।
बैठे फटिक सिला पर सुन्दर ॥

बिना भक्ति के मोक्षकी सत्ता ही नहीं है, यथा

'मोक्ष साधनसामग्रयां भक्तिरेबगरीयसी'
(आद्य शंकराचार्य)

जिस प्रकार सीढ़ी के बिना छत पर नहीं जाया जाता उसी प्रकार साधन के बिना साध्य की प्राप्ति नहीं होती । यदि कामरूप भरतजी को प्रसन्न करना हो तो अर्थ रूप शत्रुघ्नजी की आवश्यकता पड़ेगी ।

उज्वलनीमणिकार कहते हैं कि

"प्रेम एवं गोपरामाणां काम इत्यगमत्प्रथाम्"

भक्तों का प्रेम ही काम है वही प्रेम मूर्तिमान बनकर भरतजी के रूप में प्रकट हुआ।

श्रीरामचन्द्रजी ने मानवावतार स्वीकारा तो रामप्रेम ने भी मानवावतार स्वीकारा।

इस प्रकार काम और मोक्ष, अर्थ एवं धर्म के बिना नहीं प्राप्त होते। ज्ञानशक्तिरूपणी कौशल्या ने मोक्षरूप रामजी को प्रकट किया, क्रियाशक्तिरूपिणी कैकयी ने कामरूप भरतजी को प्रकट किया परन्तु इन दोनों साध्यों को प्राप्त करने के लिये साधन रूप धर्म एवं अर्थ को प्रकट किया उपासना रूपिणी सुमित्रा ने।

अतः यह कहा जा सकता है कि महाराज दशरथजी ने पट्टाभिषिक्तमहीषी होने के कारण कौशल्याजी को अधिकार दिया, कैकयी को प्यार दिया और सुमित्राजी को सत्कार दिया।

दीन्ह सुमित्रहिं मन प्रसन्न करि ॥

हवि ग्रहण करने के पश्चात् तीनों महारानियाँ गर्भवती हुई, उस समय वे कैसे सुशोभित हो रही थीं गोस्वामीजी वर्णन करते हैं,

मंदिर महं सब राजहिं रानी।
सोभा सील तेजकी खानी॥

जिस वस्तु की खान हो वहां से वही वस्तु प्रकट होती है उसी प्रकार कौशल्याजी शोभा की खान हैं उनमें शोभा का आधिक्य हैं अतः उनके पुत्र श्रीराम भी शोभाधाम हैं।

"सोभाधाम राम अस नामा"

कैकयीजी शील की खान हैं अतः भरतजी शीलनिधान हुए,

देखि भरत कर सील सनेहू।
भा निषाद तेहिं समय बिदेहू॥

और सुमित्राजी तेज की खान हैं उनमें तेजका आधिक्य है अतः उनके दोनों पुत्र तेजपुञ्ज हुए, यथा

महाराजा जनक के दूत अवधपुरि में दशरथजी के सम्मुख परिचय देते हुए कहते हैं कि

राजन राम अतुल बल जैसे।
तेज-निधान लखन पुनि तैसे॥

वैसे ही असत्यवादिनी मंथरा को देखकर तेजस्वी शत्रुघ्नजी उसे भयंकर दण्ड देने में नहीं चूकते,

लखि रिस भरेउ लखन लघु भाई।
बरत अनल घृत आहुति पाई॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा।
परि मुह भर महि करत पुकारा॥
सुनि रिपुहन लखि नखसिख खोटी।
लगे घसीटन धरि धार झोटी॥

ऐसे तेजनिधान दोनों पुत्रों को जन्म देने वाली माँ सुमित्रा धन्य हैं! उन्होंने अपने पुत्रों को बाल्यकाल से ही ऐसे तेजस्वी संस्कार प्रदान किये।

सामान्य मातायें तो बच्चों को बिल्ली दिखाकर डराती हैं बचपन से ही उनमें भय के संस्कार डालती हैं उन्हें डरपोक बना देती हैं। यह आजकल की मम्मीओं का प्रसाद है। परन्तु मां सुमित्राजी रामलाला को पालने में ही कैसे संस्कार दे रही हैं देखिये,

सखि सुमित्रा वारहीं मनि भूषन बसन बिभाग।
मधुर झुलाइ मल्हावहीं गावैं उमंगि अनुराग॥
है जग-मंगल राम लला॥१०॥

मोती जायो सीप में अरु अदिति जन्यो जग-भानु।
रघुपति जायो कौसिला गुन मंगल रूप निधानु॥
भुवन विभूषण राम लला॥११॥

राम प्रगट जबतें भए गए सकल अमंगल मूल।
मीत मुदित हित उदित हैं नित बैरिन के चित सूल॥
भव भय भंजन राम लला॥१२॥

अनुज सखा सिसु संग लै खेलन जैहे चौगान।
लंका खरभर परैगी सुरपुर बाजिहैं निसान॥
रिपुगन गंजन राम लला॥१३॥

राम अहेरे चलहिंगे जब गज रथ बाजि संवारि।
दसकंधर उर धकधकी अब जनि धावै धनुधारि ॥
अरि करि केहरि राम लला ॥१४॥
(गीतावली बाल० २२)

सखियाँ तथा मां सुमित्रा महारानी मणि, भूषण और वस्त्रों को निछावर करती हैं, वे झुलाती और पुचकारती हुई प्रेम से उमंग उमंग कर मधुर स्वर से गाती हैं कि रामलाला जगन्मङ्गलरूप हैं। जैसे सीप से मोती प्रकट होता है और अदिति से सूर्य का जन्म हुआ है उसी प्रकार कौशल्या ने गुण, मङ्गल और रूप के निधान रघुनन्दन को जन्म दिया है। रामलाला त्रिभुवन को विभूषित करने वाले हैं। जबसे रामजी का प्रादुर्भाव हुआ है तबसे सारे अमङ्गलों की जड़ कट गई है मित्र मण्डल आनन्दित है हितैषियों का अभ्युदय हो रहा है तथा बैरियों के हृदय में शूल होता है, रामलाला ससार के भय को भङ्ग करने वाले हैं। जिस समय भगवान् राम अपने भाई और साथी बालकों को संग लेकर गेंद खेलने जायगे, उस समय लङ्का में खलबली मच जायगी और स्वर्ग में बाजे बजने लगेंगे क्योंकि रामलला शत्रुदल का दमन करने वाले हैं। जिस समय रामचन्द्रजो हाथी, घोड़े और रथ संभाल कर मृगया के लिये चलेंगे उस समय रावण के हृदय में धकधकी याने धड़कन होने लगेगी कि कहीं धनुष लेकर मेरी ओर न दौड़ पड़ें, क्योंकि रामलला शत्रुरूप हाथी के लिये साक्षात् सिंह हैं।

सुमित्राजी में तेज की खान होने से वीररस की मात्रा अधिक है इसलिये बाल्यकाल में ही रावण वध के लिये राघवेन्द्र को उत्तेजित करने की शिक्षा देती हैं। सामान्य मातायें केवल उदर पोषण धर्म का ही ज्ञान देती हैं,

मातु पिता बालकहिं बोलावहीं।
उदर भरहि सोइ धरमु सिखावहीं ॥

किन्तु सुमित्राजी का चरित्र इतना उदात्त, उत्कृष्ट है कि इन्होंने रामलाला को तो वीररस की शिक्षा दी और अपने दोनों पुत्रों को भगवन्त एवं सन्त की सेवा की दीक्षा दी।

अब चारों बालक धीरे धीरे बड़े हो रहे हैं विश्वामित्रजी के

साथ राम-लक्ष्मण को जाना हुआ तब जननी भवन गये प्रभु चलेउ नाइ पद सीस। माताओं को प्रणाम करके चल दिये किन्तु सुमित्राजी ने लक्ष्मण को रोका तक नहीं। विवाह करके लौटे तब अयोध्या में मंगल साजों को सुमित्राजी ने ही सजाया गोस्वामीजी वर्णन करते हैं कि,

बिबिध बिधान बाजने बाजे।
मंगल मुदित सुमित्रा साजे॥

पहले मंगलभवन को सजाया था अब मंगल सजा रही हैं सजाने का काम इनको बहुत अच्छा आता हैं अतः राज्याभिषेक के समय भी चौक को सुमित्राजी ही सजाती हैं, यथा,

चौके चारु सुमित्रा पूरी।
मनिमय बिबिध भांति अति रूरी॥

जब विवाह करके दुल्हा श्रीराम अवध पधारे तब दुल्हन श्री किशोरीजी को मुंह दिखाई में मणिपर्वत ही नेग में दे दिया।

सुमित्राजी का उत्कृष्ट व्यक्तित्व झलकता है श्रीराम वनवास प्रसंग में। आइये अब हम उस अत्यन्त विलक्षण चरित्र की ओर दृष्टिपात करें।

श्रीरामजी के वनवास में बड़ी विलक्षणता है भिन्न भिन्न व्यक्ति श्रीराम वनवास का भिन्न भिन्न कारण दर्शाते हैं। सामान्यतः यही कहा जाता है कि श्रीरामवनगमन में मंथरा ही कारण है अतः शत्रुघ्न जी ने उसे दण्ड दिया। पुरवासियों ने रामवनगमन में कैकयी को ही कारण माना,

जहं तहं देहि केकइहि गारी।

पश्चात् वशिष्टजी से पूछा गया तो उन्होंने विधाता का नियम बताया,

सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवनु मरन जसु अपजसु विधि हाथ॥

भरतजी कहते हैं कि राम वनगमन में कैकयी ही कारण है,

धिग कैकयी अमंगल मूला।
भइसि प्राण प्रियतमप्रतिकूला॥

भरद्वाजजी का मत है कि इसमें कैकयी का दोष नहीं परन्तु सरस्वती ही उनकी मति को फेर गई अतः राम वनगमन में सरस्वती ही कारण है,

तुम्ह गलानि जिय जनि करहुं, समुझि मातु करतूति।
तात कैकइहि दोसु नहिं, गई गिरा मति धूति॥

गोस्वामी तुलसीदासजी उहते हैं कि सरस्वती तो कठपुतली है उसके सूत्रधार स्वयं अन्तर्यामी रामजी हैं,

सारद दारु नारी सम स्वामी।
राम सूत्रधर अन्तरजामी॥

अतः स्वयँ रामजी की अपनी इच्छा से ही वनवास हुआ क्योंकि वे भरतजी रूप गंभीर समुद्र को विरह मंदराचल से मथकर साधुओं के लिये प्रेमरूपी अमृत निकालना चाहते थे,

प्रेम अमिअ मंदरुबिरह, भरतु पयोधि गंभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिन्धु रघुवीर॥

परन्तु यही प्रश्न मां सुमित्राजी से किया गया कि मां आपका क्या मत है श्रीराम गमन में ?

तब सुमित्राजी कहती हैं कि श्रीराम वनगमन में केवल लक्ष्मण का सौभाग्य ही कारण है, वे लक्ष्मणजी को कहती हैं, कि

तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं।
दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥

लक्ष्मण ! तुम्हारे सौभाग्य से ही रामभद्र बन को जा रहे हैं और कोई दूसरा कारण नहीं है।

रामजी ने वन में दो कार्य किये लक्ष्मणजी के भाग को और भरतजी के अनुराग को जगाया। सुमित्राजी जानती हैं कि गुरुदेव वशिष्टजी के द्वारा नामकरण संस्कार हुआ तब लक्ष्मण का नाम रखते समय वशिष्टजी ने कहा कि,

लच्छन धाम रामप्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु बशिष्ट तेहि राखा लछिमन नाम उदार॥

सुमित्राजी जानती हैं कि लक्ष्मणजी में चार गुण हैं वे लक्षणों के धाम, जगत के आधार, रामजी के प्रिय तथा उदार हैं परन्तु ये चारों गुण भगवान् रामजी के साथ जब ये वन में जायेंगे तभी प्रगट होंगे अतः सुमित्राजी ने कहा कि रामजी तुम्हारे ही भाग्य से वन जा रहे हैं। क्योंकि अवधधाम तो स्वयं सद्गुणों का धाम है उस अवधधाम में लक्षणधाम कैसे रह सकेंगे ? लक्षणों का प्रयोग तो वहीं होगा जहां वस्तु की असिद्धि लगने लगे "लक्षणप्रामाणाभ्यां वस्तुसिद्धिः" अतः वनवास में ही आपके लक्षण प्रगट हो पायेंगे। और मेघनाद को मारकर सकल जगत के आधार आप बन पायेंगे। रामजी की सेवा करने से रामप्रिय बन पाओगे तथा वन में ही आपको उदारता के दर्शन होंगे।

लक्ष्मण का अर्थ होता है "लक्षे मनः यस्य सः लक्ष्मणः" अर्थात् लक्ष में मन है जिसका। हमारा मन तो रात और दिन भक्ष में रहता है किन्तु लक्ष्मणजी का मन लक्ष में जुड़ा हुआ है। लक्ष्मणजी का लक्ष है केवल भगवान् राम।

रामजी पुष्प हैं पुष्प जंगल में होता है और जंगल में जाकर ही पुष्प का चयन किया जाता है लक्ष्मणजी ने रामजी का चयन कर लिया अतः सुमित्राजी कहती हैं कि "तुम्हरे भाग राम बन जाहीं"

भगवान् चिदचिद्विशिष्ट हैं आज तक सभी आचार्यों ने इसका यही अर्थ किया कि चित् याने चेतन और अचित् याने जड़ इन दोनों से परमात्मा विशिष्ट है किन्तु यहाँ हमें एक जिज्ञासा होती है कि यदि यहाँ अचिद् का अर्थ जड़ याने माया को माना जाय तो जड़ भगवान् का विशेषण कैसे हो सकेगा ? क्योंकि विशेषण निरन्तर नाम के साथ जुड़ा हुआ होता है,

विद्यमानत्वे सति इतर व्यावर्तकत्वं विशेषणत्वम्।

विशेषण को विद्यमान रह कर इतर व्यावर्तक होना चाहिये, तो जड़ वस्तु विद्यमान परमात्मा के साथ कैसे रहेगी ?

अतः यहाँ हमारा नवीन अर्थ यह है कि चिद् याने चिनोति इति चिद्, जो अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष का चयन करता है वह चिद् जीव है और न चिनोति इति अचिद् अर्थात् जो चयन नहीं करती आनन्द अनुभव करती है वह है भगवान् की माया और

भगवान् जीव एवं माया इन दोनों से विशिष्ट हैं यदि ऐसा न होता तो यहाँ जड़चेतनविशिष्ट क्यों नहीं कहा गया ? पर कहते हैं चिदचिद्विशिष्ट, इसलिये यहां यही अर्थ उपयुक्त लगता है। अचित् याने माया। वह अर्थ, धर्म, लाभ, मोक्ष का चयन नहीं करती वह तो भगवान् का ही चयन करती है, वह भगवान् की आह्लादिनी शक्ति है सीता। चिद् याने चयन करने वाले, लक्ष्मण चित् है तथा इन दोनों से विशिष्ट हैं भगवान् राम।

राम बाम दिसि जानकी, लखन दाहिनी ओर।
ध्यान सकल कल्यानमय, सुरतरु तुलसी तोर॥

सीताजी अचित, हैं यहाँ "न चित् अचित्" ऐसी व्याख्या नहीं होती पर "अकारं वासुदेवं चिनोति सा" अर्थात् जो राघव को ही वरण करती हैं,

'अक्षराणां अकारोऽस्मि"

(गीता– १०-३२)

"वव्रे वरं सर्वगुणैरपेक्षितं, रामामुकुन्दं निरपेक्ष मिप्सितं"

(भागवत–८-८-३२)

रंगभूमि में सभी राजा बैठे हैं परन्तु वह किसी का चयन नहीं करती किसी का वरण नहीं करती।

लक्ष्मण जी तो सबको देखते हैं क्यों कि वे चित् हैं, यथा'

अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप॥

किन्तु सीता जी तो केवल राम जी को ही देखती हैं, वे अचित् हैं।

सीय चकित चित रामहिं चाहा।
भए मोहबस सब नरनाहा॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई।
लगे ललकि लोचन निधि पाई॥

सुमित्राजी यही कह रही हैं कि लक्ष्मण ! तुम्हारा भाग्य कब जागेगा ? जब तुम भगवान् का चयन करोगे और चयन वन में होता है अतः

तुम्हरे भाग राम बन जाही।
दूसर हेतु तात कछु नाही॥

दशरथजी का भाग्य भवन में विकसित हुआ, भरतजी का भाग्य ग्राम में विकसित हुआ तथा लक्ष्मणजी का भाग्य वन में विकसित होगा। जब वे सेवा करेंगे, क्योंकि वैष्णव जगत में कैंकर्य प्रधान माना जाता है अतः सुमित्राजी का यही मत है कि लक्ष्मणजी के सौभाग्य को सफल करने के लिये ही रामजी वन में जा रहे हैं।

पूरे अयोध्या में राम वनवास के समाचार से खलमली मच गई, लक्ष्मणजी अपने महल में विराजमान हैं।

गोस्वामीजी वर्णन कर रहे हैं, कि

समाचार जब लछिमन पाए।
व्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥

लक्ष्मणजी ने समाचार पाये, ये समाचार उन्होंने कहाँ से पाये? यह वर्णन यहां नहीं किया गया पर अन्तरंग समाचार पत्नीसे ही पाये जाते हैं। सीताजी के महल में उर्मिला गई थीं वहाँ जैसे उन्होंने यह जाना कि रामजी को चौदह वर्ष का वनवास हुआ है और जानकीजी ने भी अनुनय करके रामजी के साथ जाने के लिये आज्ञा पा ली है तुरन्त ही दौड़ती हुई आकर उन्होंने अपने पतिदेव को यह समाचार सुनाये। अतः गोस्वामीजी लिखते हैं कि,

"समाचार सब लछिमन पाए"
व्याकुल बिलख बदन उठि धाए॥

लक्ष्मणजी व्याकुल होकर तुरन्त ही दौड़ पड़ते हैं। राघवेन्द्र ने लक्ष्मणजी पर दृष्टि डाली,

राम बिलोकि बंधु कर जोरे।
देह गेह सब सन तृनु तोरे॥

लक्ष्मणजी नेदोनों हाथ जोड़े हुए हैं। पुरुष के दो हाथ होते हैं, दाहिने हाथ का सम्पर्क माँ से एवं बायें हाथ का सम्पर्क पत्नी से होता है। यदि दोनों हाथों को माँ तथा पत्नी ने पकड़ कर रखा हो तो वह परमात्मा को हाथ कैसे जोड़ सकेगा? जब तक व्यक्ति माँ तथा

पत्नी इन दोनों से अपने हाथ को छटका न ले तब तक वह हाथ जोड़ने में सफल नहीं हो सकता। रामजी ने देखा, "राम बिलोकि बंधु कर जोरे" लक्ष्मणजी हाथ जोड़े हुए हैं। अतः उन्होंने समझ लिया कि ये उर्मिला एवं सुमित्रा को छोड़ कर मेरे साथ आना चाहते हैं। गोस्वामीजी आगे कहते हैं कि "देह गेह सब सन तृन तोरे" देह का सम्बन्ध माता से होता है, क्योंकि इस देह को मां ने जन्म दिया। अत शरीर पर उसका अधिकार है। और गेह याने घर का सम्बन्ध पत्नी से होता है। जब तक देह या गेह में ममता रहेगी तब तक रघुनाथजी में नेह नहीं हो पायेगा। लक्ष्मण जी ने उन दोनों के सम्बन्ध तृण के समान तोड़ दिये और दोनों हाथ जोड़ कर खड़े हो गये।

रामजी ने लक्ष्मणजी से कहा तुम वन चलना चाहते हो। परन्तु मेरी शिक्षा सुनो,

मातु पिता गुरू स्वामि सिख, सिरधरि करहिं सुभायं।
लहेउ लाभु तिन्ह जनम कर, नतरु जनम जग जायं॥

जो व्यक्ति सहजतया माता, पिता, गुरु, स्वामी की आज्ञा पालन करता है उनकी शिक्षा को ग्रहण करता है वह जन्म के लाभ को प्राप्त करता है नहीं तो यह जन्म व्यर्थ चला जाता है।

लक्ष्मणजी ने कहा, सरकार। शिक्षा सुनी जाती है गुरू की, तथा सेवा की जाती है माता-पित्ता की। किन्तु मैं तो गुरू, मातापिता किसी को भी नहीं जानता यह सत्य कह रहा हूँ आप विश्वास कीजिये,

गुरु पितु मातु न जानउं काहू।
कहउं सुभाव नाथ पति आहू॥

भगवान् ने कहा अच्छा। गोविन्द को तो जानते हो तो गोविन्द की कृपा से ही संद्गुरू की प्राप्ति होती है। अतः प्रथम मैं तुम्हें सद्गुरू से मिला दूँ, फिर तुम सब कुछ जान जाओगे। इसलिये कहा,

मागहु बिदा मातु सन जाई।
आवहु बेगि चलहु बन भाई॥

लक्ष्मण जी ने कहा, मैं कहां जाऊँ ? प्रभु ने कहा, मेरी माता सुमित्रा से विदा मांग के आओ, माता याने सुमित्रा । और जननी याने कौशल्या । अतः कहा, सुमित्रा से विदा माँग के आओ फिर वन चलना लक्ष्मण जी । माता के पास विदा लेने जा रहे हैं ।

॥ इति शम् ॥

॥ श्री राघवः शन्तनोतु ॥

॥ श्री राघवोविजयतेतराम् ॥

पंचम कुसुम

उपासनोपासित भक्तिमार्गा सम्मार्गयन्तीश्रुतिमृग्यमीशाम्
चुम्बन्त्यनन्तं शिशुराघवं सा सौमित्रिमाता जयता सुमित्रा

श्री सीता नाथ समारम्भां श्री रामनन्दार्य मध्यमाम् ।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वंदे श्री गुरू परम्पराम् ॥

वाञ्छा कल्पतरुभ्यश्च कृपा सिन्धुभ्य एव च ।
पतितानां पवनेभ्यो श्री वैस्णवेभ्यो नमो नमः ॥

नीलाम्बुजश्यामल कोमलांगं । सीता समारोपित वाम भागम् ।
पाणौ महासायक चारु चायं नमामि रामं रघुवंश नाथम् ॥

नीललाम रस दाम रुचि, नरपति ललिन ललाम ।
निज पद कमले मधुय मिव रमय मनो मम ॥

श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मन मुकुर सुधारि ।
बरनौ रघुबर बिमल जस जो दायक फलचारि ॥

— o —

गौर किसोर वेष बर काछे ।
कर सर चाप राम के पाछे ॥
लछिमन नाम राम लघु भ्राता ।
सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ॥

भुवनभूषण, निरस्तनिखिलदूषण, समरनिहतखरदूषण, दूषण-दूषण, भूषण भूषण, रघुवंशविभूषण, मर्यादापुरुषोत्तम श्रीमद् रामचन्द्रजू की भुवनपावनी कृपा से बिना प्रयास के ही प्राप्त अत्यन्त मनोरम सत्संग प्रयाग में अब हम कुछ क्षणों के लिये मज्जन का उपक्रम करते हैं ।

महिमामयी मिथिलानियाँ अत्यन्त सारगर्भित एवं प्रसन्नता के स्वर में भगवती सुमित्रा की प्रशंसा कर रही हैं। वास्तव में सुमित्रा जी ही जीव की परम मित्र हैं। मित्र शब्द की परिभाषा आचार्यों ने विविध प्रकार से की है, एक व्याख्या यह भी है,

"मिलन्तं त्रायते यस्मात् तस्मान् मित्रमितीर्यते।"

जो मिलते ही मिलने वाले को संसार की बाधा से बचा लेता है वह मित्र है। सुमित्रा जी ने बाल्यकाल से ही लक्ष्मण के मन को प्रभु के चरणों में लगा दिया था।

वन गमन के समय भगवान् राम की अनुज्ञा न मिलने के कारण वे व्याकुल हैं, प्रभु ने उन्हें निर्देश किया,

मागहु बिदा मातु सन जाई।
आवहु बेगि चलहु बन भाई॥

लक्ष्मणकुमार ने कहा, प्रभु ! मैंने तो आपको प्रथम ही कहा कि,

गुरु पितु मातु न जानउं काहू।
कहउं सुभाव नाथ पतिआहू॥

हे नाथ ! विश्वास कीजिये मैं अपना स्वभाव बता रहा हूँ कि मैं गुरु, माता-पिता किसी को भी नहीं जानता हूँ।

लक्ष्मणकुमार ने अपने स्वभाव की चर्चा दो बार की। एक मिथिला में, तथा दूसरी अयोध्या में। भगवान् शंकर के धनुष के विषय में भी एक विचित्र विडम्बना प्रस्तुत हुई, शंकरजी के धनुष को तीन रूपों में देखने का प्रयास किया गया है। गोस्वामीजी से पूछा गया कि आप शंकरजी के धनुष को किस दृष्टि से देखते हैं, उन्होंने कहा कि शंकरजी का धनुष मेरी दृष्टि में भवभय है।

भंजेउ राम आप भव चापू।

और भव को भंजन करने के लिये श्रीराम नाम का प्रताप सामर्थ्य रखता है,

भव भय भंजन नाम प्रतापू।

अतः गीतावली में गोस्वामी जी ने गाया,

"भव भय भंजन राम लला"

भव भय भंजन तो केवल रामजी हैं इसलिये विश्वामित्रजी ने कहा,

उठहु राम भंजहु भव चापा।
मेटहु तात जनक परितापा॥

पुनः लक्ष्मण जी से पूछा गया कि आप शंकरजी के धनुष को क्या मानते हैं, उन्होंने कहा मैं इसको अंधकार मानता हूँ,

नृप सब नखत करहिं उजियारी।
टारि न सकहिं चाप तम भारी॥

और इस अंधकार रूप धनुष को नष्ट करने के लिये श्री राम को वे सूर्यरूप में देखते है इसलिये, कहते हैं कि,

सुनहु भानुकुल पंकज भानू।
कहहुँ सुभाव न कछु अभिमानू॥

हे भानूवंशरूप कमलों के लिये सूर्यरूप राघवेन्द्र ! सुनिये, कुछ भी अभिमान किये बिना सहजतया अपना स्वभाव कहता हूँ कि यदि शंकरजी का धनुष गहन अंधकार है तो आप स्वयं सूर्य हैं इसलिये आप ही इसे नष्ट कर सकते हैं, परन्तु यदि आप अनुज्ञा दें तो इस अंधकार रूप धनुष को मैं भी नष्ट कर सकता हूँ क्योंकि न्यायतः सूर्योदय के पहले जो अरुणोदय होता है वही अंधकार को नष्ट करता है। अतः प्रभु ! यदि आप सूर्य हैं तो मैं आपकी लालिमा हूँ मेरा, शरीर भी लाल है,

छतज नयन उर बाहु बिसाला।
हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला॥

इस प्रकार मिथिला की रंगभूमि पर लक्ष्मणजी ने अपने सहज स्वभाव का परिचय दिया और अब पुनः अयोध्या में राजरस भंगभूमि में प्रभु को अपने स्वाभाविक स्वभाव का परिचय कराते हैं कि, मैं आपके सिवा गुरु, पिता-माता किसी को नहीं जनता।

भगवान् राम कहते हैं, ठीक है आप अपनी माता को नहीं जानते पर मैं अपनी माता से विदा मांग कर आने के लिये कह रहा हूँ, और मेरी माता हैं सुमित्रा। उनके पास मैं तुम्हें अपना प्रतिनिधि बना कर भेज रहा हूँ, तुम मेरे लिये उनके पास से विदा मांग कर आओ!

लक्ष्मणजी को आश्चर्य हुआ कि सब जगह तो अपना प्रतिनिधि भेजा जा सकता है क्या माता के पास भी आप प्रतिनिधि भेजेगें! आप स्वयं वहां विदा मांगने नहीं जा सकते!

रामजी ने कहा लक्ष्मण! बात ऐसी है कि सुमित्रा जी मुझ पर बहुत अधिक स्नेह करती हैं। जिन्होंने मुझे अपने करकमल के द्वारा नाना प्रकार से संवारा, जिन्होंने मुझे निहार २ कर चुचकारा, बार बार दुलारा तथा जिन्होंने अपने वात्सल्य भरे नयनाश्रुओं से मुझे इस वन्यवेष में नहीं देख सकेगी। अतः मुझे प्रथम आशंका तो यही है कि वन जाते देखकर कहीं वे अपने प्राणों को ही न छोड़ दें और दूसरी आशंका यह है कि सुमित्राजी में तेज की अधिकता होने के कारण उनका स्वभाव कड़ा है उनके द्वारा कठोर निर्णय भी बहुत जल्द लिया जाता है। अतः मुझे उनसे कुछ भय इस बात का लगता है कि शास्त्र में पिता से माता दसगुनी बड़ी मानी जाती है, और स्वमाता से सौतेली माता दसगुनी बड़ी मानी जाती है, इसलिये कौशल्याजी ने रामजी से कहा था,

जौ केवल पितु आयसु ताता।
तौ जनि जाहु जानि बड़ि माता॥
जौ पितु मातु कहेउ बन जाना।
तौ कानन सत अवध समाना॥

यदि केवल पिता ने वन जाने की आज्ञा दी हो तो पिता से माता की आज्ञा बड़ी मानकर आप वनको नहीं जाइये परन्तु यदि पिता और माता दोनों ने वन जाने का आदेश दिया हो तो आपके लिये वन शत् शत् अयोध्या के समान है,

गीतावली में कौशल्याजी कहती हैं,

रहि चलिये सुन्दर रघुनायक।
जो सुत! तात वचन पालन रत, जननिउ तात मानिबे लायक॥

वेद विदित यह बानि तुम्हारी, रघुपति सदा संत सुखदायक।
राखहु निज मरजाद निगमकी, हौं बलि जाऊं धरहु धनुसायक॥
सोक कूप पुर परिहि मरिहि नृप सुनि संदेस रघुनाथ सिधायक।
यह दूसन बिधि तोहि होत अब रामचरन बियोग उपजायक॥
मातु बचन सुनि स्रवत जल कछु सुभाउ जनु नरतनु पायक।
तुलसिदास सुर-काज न साध्यौ तौ तो दोष होय मोहि महि आयक॥

हे सुन्दर रघुनन्दन ! आप रह जाइये बेटा ! यदि तुम पिता के वचनों का पालन करने में ऐसे तत्पर हो तो हे तात ! तुम्हारे लिये माता भी तो माननीया है, तुम्हारा यह स्वभाव तो वेद में भी विख्यात है कि रघुनाथजी सर्वदा सत्पुरुषों को सुख देने वाले हैं अतः मैं बलिहारी जाती हूं तुम अपनी वेदोक्त मर्यादा की रक्षा करो और धनुष-बाण उतार कर रख दो क्योंकि राम-वन गमन के समाचार पाते ही सारा नगर शोककूप में डूब जायगा और महाराज भी प्राण छोड़ देंगे। अरे, रामचरणों से बिछोह कराने वाले विधाता ! देख, यह दोष अब तेरे ऊपर आने वाला है। माता के ये वचन सुनकर प्रभु नेत्रों से जल बहाने लगे कि मां के वचनानुसार अब मुझे वन नहीं जाना चाहिये परन्तु यदि वन नहीं जाता हूं तो देवताओं का कार्य नहीं कर पाउंगा और देवताओं का कार्य नहीं किया तो मुझे पृथ्वी पर आने का दोष लगेगा।

इसी प्रकार माँ कौशल्या राघव को कहती हैं कि यदि पिताजी ने कहा हो वन जाने के लिये तो पिता से मेरा स्थान दस गुना बड़ा है अतः मैं कह सकती हूं कि आप वन मत जाइये पर यदि पिता-माता दोनों ने कहा हो तो सौतेली माता मेरे से दस गुनी बड़ी है अतः १०×१०=१०० तो तुम्हारे लिये कानन अवध से भी सौगुना बड़ा है। "तौ कानन सत अवध समाना"

भगवान् रामजी का सुमित्राजी के पास जाने में यही भय है वे कहते हैं लक्ष्मण ! वे यह कह सकती हैं कि जैसे कैकयी का आदेश पिताजी की अपेक्षा सौगुना बड़ा है उसी प्रकार सुमित्रा का भी आदेश सौगुना बड़ा हो सकता है तो राघव ! जिस सौतेली माता के अधिकार से कैकयी ने बिना अपराध के आपको चौदह वर्ष का वनवास दिया, उसी सौतेली माता के अधिकार से मैं उस वनवास के आदेश को निरस्त करती हूं।

लक्ष्मण ! यदि माँ सुमित्रा ऐसा आदेश देगी तो मैं उसका उल्लंघन नहीं कर पाउंगा। अतः इसी भय से मैं सुमित्राजी के पास विदा लेने नहीं जा रहा हूं आप मेरे प्रतिनिधि बन कर मेरी ओर से विदा मांग शीघ्र आओ और वन में साथ चलो !

लक्ष्मण ! मेरी ओर से माता से यह कहना कि,

कह देना सुमित्रा से लाल तेरा मुनि बेष में कानन जा रहा है।
निज धर्म के वर्मपे सुस्थिर हो प्रिय तात निदेश निभा रहा है।।
सब कौशलवासियों के द्दग की जल अश्रुओं से बो नहा रहा है।
पर अंब तुम्हारे बिलोकने में मन में अतिशय सकुचा रहा है।।

जब माँ के पास बिदा माँगने के लिये प्रभु ने भेजा तो लक्ष्मण जी प्रसन्न हो गये, गोस्वामीजी बहुत सुन्दर वर्णन करते हैं,

हरषित हृदयं मातु पहिं आए।
मनहुं अंध फिरि लोचन पाए।।

अंध को लोचन तो राजीवलोचन ही दे सकते हैं, यहां गोस्वामी जी बड़ा मधुर भाव उद्घाटित करते हैं। वास्तव में लक्ष्मणजी प्रेम में अंधे हो गये हैं, उन्हें अपने कर्तव्य का विस्मरण हो गया है, उस कर्तव्य का पुनः संस्मरण करने के लिये राजीवलोचन ने उन्हें लोचन दिये। प्रभु जानते हैं कि जब तक गुरु नहीं मिलेंगे तब तक इनके नेत्र का रोग समाप्त नहीं होगा, यथा,

श्रीगुरु पद नख मनि गन जोती।
सुमिरत दिव्य द्दष्टि हिय होती।।
दलन मोह तम सो सुप्रकासू।
बड़े भाग उर आवइ जासू।।
उघरहिं विमल बिलोचन ही के।
मिटहिं दोष दुख भव रजनी के।।

अतः भगवान् श्रीराम बिदा मांगने का एक बहाना बना रहे हैं, जब लक्ष्मणजी ने कहा, कि "मैं गुरु, माता, पिता किसी को नहीं जानता हूँ" तब प्रभु ने सोचा कि ठीक है उपासना में माता-पिता को न जानना कोई विशेष बात नहीं

भये कालबस जब पितु माता।
मैं वन गयउँ भजन जनत्राता।।

परन्तु लक्ष्मणजी तो गुरु को भी नहीं जानते। भगवान् ने कहा कोई बात नहीं गुरु को गोविन्द की कृपा से ही जाना जा सकता है, मैं अपनी मां को ही तुम्हारा गुरु बनाउंगा क्योंकि, "नास्ति मातृ समो गुरुः" संसार में मां के समान कोई गुरु नहीं होता।

लक्ष्मणजी माँ के पास आये तो ऐसा लगा मानो उन्हें पुनः दृष्टि प्राप्त हो गई हो।

दृष्टिहीन कौन माना जाता है? जिसे शास्त्रीय, अलौकिक दृष्टि न हो,

सर्वस्य लोचनं शास्त्रं यस्य नास्त्यन्ध एव सः।

शास्त्र ही वास्तविक नेत्र है जिसके पास शास्त्रज्ञान नहीं वह नेत्र होते हुए भी अंधा है।

यहां लक्ष्मणजी को शास्त्रीयता भूल गई थी वे कहने लगे 'गुरु पितु मातु न जानहुँ काऊ' ज्ञान दृष्टि से हीन हो गये थे अतः मां के पास आते ही मानो अंधे को दृष्टि प्राप्त हो गई। जिसके पास भौतिक दृष्टि भी नहीं और शास्त्रज्ञान भी नहीं वह अंध दया का पात्र है। हमने भगवान् को दो स्थानों पर सुस्पष्ट रूप से देखा है एक तो बालकों में और दूसरे विकलांगों में। बालक एवं विकलांग दोनों भगवान् की मूर्ति हैं। भगवान् की मूर्ति किसे कहते हैं? जो हमारा कुछ प्रतिकार न कर सके यदि हम उसे मारे भी तो वह कुछ प्रतिकार नहीं करती। उसी प्रकार बच्चे को या विकलांग को मारो तो वह केवल रो देगा कुछ प्रतिकार नहीं करेगा। अतः भगवान् को दो जगह देखो, बालक में, और विकलाँग में।

बन्दउ सीतारामपद जिन्हहिं परमप्रिय खिन्न।

लक्ष्मणजी को विदा मांगने के बहाने राघवेन्द्र ने माता के पास भेजा और मानो बिजली का बटन चलाया तुरन्त करंट आया,

जाइ जननि पग नायउ माथा।
मनु रघुनन्दन जानकि साथा।

लक्ष्मणजी ने मां को प्रणाम किया पर उनका मन तो रघुनन्दन और जानकी जी के साथ है क्योंकि उनका मन निरन्तर लक्ष में

रहता है "लक्ष्ये मनः यस्य सः लक्ष्मणः" इसीलिये उनका नाम लक्ष्मण है।

लक्ष्मणजी ने अपने मन का सदुपयो किया है उन्होंने अपने मन को मन के देवता को सौंप दिया है। मन के देवता चन्द्रमा हैं। सुन्दर कान्ड में एक प्रसंग आता है अशोकवाटिका में अशोक वृक्ष के नीचे सीताजी को आंजनेय ने देखा,

निज पद नयन दिये मन राम पदकमल लीन।
परम दुखी भा पवनसुत देखि जानकी दीन॥

सीताजी का मन रामजी के पदकमल में लीन है, सीताजी ने सोचा कि यदि राघुवेन्द्र के वियोग में मेरी मृत्यु हो जाय तो मृत्यु के पश्चात प्रत्येक इन्द्रियां अपने देवता के पास चलीं जाती हैं। आंख के देवता सूर्य, नासिका के देवता अश्वनी कुमार, वाणी के देवता अग्नि तथा मन के देवता चन्द्रमा हैं,

चक्षुर सूर्यं नासिका आश्विनौ वाचः अग्निं मनश चन्द्रम्।

अतः भगवती सीताजी ने सोचा कि मृत्यु के पश्चात् यदि मेरा मन सकलंक चन्द्रमा में चला जायेगा तो मेरा पतिव्र धम ही नष्ट हो जायेगा। मैंने तो जीवन भर अपने मन को रामचन्द्र के पदकमल की नखमणि चन्द्रिका में लगाकर रखा है इसलिये यह मन सकलंक चन्द्रमा में कैसे मिलेगा। एतावता मैंने अपने मन को श्री रामचन्द्र के पदकमल में लगाया है जिससे चन्द्रमा के आते ही यह कमल बन्द हो जायेगा और मेरा मन भी उसके अन्दर कैद हो जायेगा जिससे आकाश के चन्द्रमाका ढँढनेपर भी मेरा मन नहीं मिल पायेगा।

इसी प्रकार से लक्ष्मणजी भी अपने मन में रामजी और जानकीजी के साथ लगाकर रखते हैं। उनसे पूछा गया आप ऐसा क्यों करते हैं? उन्होंने कहा कि शायद यदि माताजी वन जाने के लिये विदा देने से इन्कार कर देतीं हैं तो उनके आदेश का मैं उल्लंघन नहीं कर सकता किन्तु उस समय मेरी मृत्यु निश्चित ही होगी और मृत्यु के पश्चात् आकाश का चन्द्र मेरे मनको न ले जाय इसलिये में प्रथम से ही अपने मन को रामचन्द्र एवं सीता चंद्रिका में लगायें रखता हुँ जिससे चन्द्रमा इसे न पा सके।

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः

मन ही मनुष्यों के बन्धन एवं मोक्ष का कारण है।

लक्ष्मण कुमार ने मां के चरणकमल में प्रणाम किया एवं खड़े हो गये।

पूंछे मातु मलिन मन देखी।
लखन कही सब कथा बिसेषी ॥

मां ने पूछा कि आज तुम अन्यमनस्क क्यों हो? यहां मलिन मनका यही अर्थ है अर्थात् तुम्हारा मन म्लान क्यों है? तुम्हारे मन के हर्ष, प्रेम, आनन्द कहां गये? क्योंकि प्रत्येक समय लक्ष्मणजी का मन प्रेम आनंद में मग्न रहता है, यथा,

तेहि अवसर आये लखन मगन प्रेम आनंद।
सनमाने प्रिया वचन कहि, रघुकुल कैरवचंद ॥

लक्ष्मणजी ने पूरी कथा सुनाई कहा मां! जब अयोध्या के उत्कर्षका ही क्षय हुआ तो मेरा हर्ष रहेगा कैसे? माँ! अब राघवेन्द्र सरकार चौदह वर्ष के लिये आपकी आंखों से ओझल हो रहे हैं, अयोध्या से चन्द्र जा रहा है लगता है अयोध्या में चौदह वर्ष तक अमावस्या छाई रहेगी। बस यह कठोर समाचार सुनते ही सुमित्रा माँ सूख गई, जैसे चारों ओर दावानल देख कर मृगी व्याकुल हो जाती है उसी प्रकार माँ की व्याकुलता को देखकर लक्ष्मणजी सोचने लगे कि कहीं इनका स्नेह मुझे बन्धन में न डाल दे, मेरे कार्य में बिघ्नरूप न बने अतः बिदा मांगने में संकोच कर रहे हैं,

मागत बिदा सभय सकुचाहीं।
जाई संग विधि कहिहि कि नाहीं ॥

लक्ष्मणजी को भय है और संकोच भी। लक्ष्मणजी को माता जी का संकोच इस बात का है कि यदि मां वन जाने के लिये निषेध कर देगी तो? यदि माताजी की आज्ञा का उल्लघन करता हूँ तो राघवेन्द्र मुझसे नाराज हो जायेंगे यही मन में भय है।

यही मानस का हार्द है कि लक्ष्मणजी को मां से कोई भय नहीं उन्हें मां का संकोच एवं रामजी का भय है। क्योंकि लक्ष्मणजी केवल

रामजी से डरते हैं कारण कि वे स्वयं सबके काल हैं लक्षमण कुमार को शेष भी कहा जाता है। शेष माने जो सबको काट कर बच जाये जैसे सत्रह को चार से भागकार करने पर सोलह घट जाते हैं और एक शेष रह जाता है उस बचे हुए एक को कोई नहीं काट सकता। लक्ष्मणजी शेष हैं इसीलिये जब परशुराम जी फरसा उठाकर उन्हें काटना चाहते हैं तब लक्ष्मणजी को हंसी आती है मानों वे संकेत करते हैं कि बाबा ! अपको प्राथमिक गणित का भी ज्ञान नहीं है जब शेष याने बचे हुए को गणित भी नहीं काट सकता उसे आप फरसे से कैसे काट सकोगे।

लक्ष्मणजी काल होते हुए भी राघवेन्द्र से डरते हैं क्योंकि

जाके डर अति काल डराई।
सो सुर असुर चराचर खाई॥
सो फलभक्षक कठिन कराला।
तव भय डरत सदा सोइ काला॥

भगवान् तो काल के भी काल हैं भुवनेश्वर कालहुँ कर काला। अत: लक्ष्मण जी केवल रामजी से डरते हैं,

कहि न सकत रघुवीर डर, लगे बचन जनु बान।

इसलिये यहां गोस्वामी जी का यही मन्तव्य है कि लक्ष्मणजी को मां का संकोच और रघुनाथजी का डर है लक्ष्मणकुमार मां को समझ नहीं पाये। सुमित्रा जी का इतना निर्मल व्यक्तित्व है कि लक्ष्मण भी उन्हें पहचान नहीं पा रहे हैं इसलिए सन्देह कर रहे हैं कि कहीं ये मेरा कार्य न बनने दे। परन्तु वास्तव में सुमित्राजी को अपने पुत्रों के प्रति स्नेह है मोह नहीं यदि मोह होता तो वे लक्ष्मण को वन नहीं जाने देतीं।

सुमित्राजी तो बाल्यकाल से ही जानती हैं कि,

अनुज सखा सिसु लै खेलन जैहैं चौगान।
लंका खरभर परैगी सुर पुर बाजिहैं निसान॥
रिपुगन गंजन रामलला॥
(गीतावली बाल २२/१३)

राम जी चौगान में अनुज सखा तथा शिशुओं के साथ खेलने जायेंगे तब लंका में खलभली मच जायगी। अयोध्या के चौगान में राम जी बराबर खेल नहीं पाये क्योंकि यहां प्रतिपक्ष के रूप में भरत जी थे इससे विशेष आनन्द नहीं आया। किन्तु अब राम जी खेलने जायेंगे यहां अनुज के रूप में लक्ष्मण, जी सखा सुग्रीव व विभीषण एव शिशु के रूप में सभी बानर मण रहेंगे और कन्दुक के रूप में रावण के सिर ही होंगे, यथा,

तब सिर निकर कपिन के आगे।
परिंहि धरनी राम सर लागे॥
तब सब सिर कन्दुक इव नाना।
खेलिहहि भालु कीस चौगाना॥

यहाँ छोटे छोटे वानर ही शिशु के रूप में हैं इसलिये शिशु को ऊपर बैठाया। शिशु निरन्तर ऊपर बैठता है और माता–पिता नीचे बैठते हैं उसी प्रकार भगवान् नीचे बैठते हैं और शिशु वनार सब डाल पर,

प्रभु तरु तर कपि डार पर, तें किये आपु समान।
तुलसी कहुँ न राम सो साहिब सील निधान॥

लक्ष्मण कुमार ने कहा महाराज! ये कौनसा तरीका है कि प्रमुख श्री नीचे बैठे और सभासद ऊपर! भगवान् ने कहा कोई बात नहीं ये शिशु हैं।

भगवान् राम वानरों का शिशु ही मानते हैं रावणबध के पश्चात् जब विभीषण जी के द्वारा सीता जी को राघवेन्द्र के निकट लाया जा रहा था तब प्रभु ने स्पष्ट कहा—

कह रघुवीर कहा मम मानहु।
सीतहि सखा पयादेहि आनहु॥
देखहु कपि जननी की नाईं।
बिहसि कहा रघुनाथ गोसाईं॥

सीता जी से कह दो कि वह दुल्हन बन कर न आयें कोई भी स्त्री दुल्हन तब होती है जब उसके पास बच्चे न हों, पर यहाँ तो,।

ये सब बानर उनके बच्चे हैं अत: देखहिं कपि जननी नाई" इन बच्चों की मां बनकर पैदल चल कर ही आयें।

इन्हीं वानर शिशुओं के साथ अनुज लक्ष्मण व सखा सुग्रीव, विभीषणजी के साथ श्री राम लंका चौगान में खेलने जायेंगे यह बात सुमित्रा जी प्रथम से ही जानती थीं फिर भी लक्ष्मण जी के द्वारा दिये गये कठोर समाचार से सुमित्रा जी कांप उठीं। गोस्वामी जी कहते हैं,

समुझि सुमित्रा राम सिय, रूपु सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु, पापिनी दीन्ह कुदाउ॥

सुमित्रा जी श्री सीता राम जी के रूप, शील एवं स्वभाव का स्मरण करने लगीं, कहने लगीं कि क्या अनर्थ हो गया! क्या इतना सुन्दर रूप, इतना श्रेष्ठ शील इतना मधुर स्वभाव क्या वन के योग्य हैं? महाराज के स्नेह का ध्यान आते ही वे सिर पिटने लगीं अरेअरे! इस पापिनी ने बुरी तरह घात लगाया।

सुमित्रा जी तेजकी खान हैं अत: कैकयी से छोटी होने पर भी कैकयी के प्रति आक्रोश कर देती हैं माँ कौशल्या जी के सामने जब राघवेन्द्र का इशारा पाकर सचिवपुत्र अभिनन्दन जी सारी कथा सुनाते हैं तब भी कौशल्या जी के मनमें आक्रोश नहीं आता उन्होंने कहा कि यदि माता-पिता दोनों की आज्ञा हो ती आपके लिये वन शत अवध के समान हैं।

जौं पितु मातु कहहिं बन जाना।
तौं कानन सत अवध समाना॥

किन्तु तेजस्वरूपा होने के कारण सुमित्रा जी को आक्रोश आ ही जाता है। उन्होंने तुरन्त कहा कि इस पापिनी ने सबसे बड़ा अनर्थ कर दिया कि महाराजा चक्रवर्ती के प्रेम की हत्या कर दी। महाराज की इच्छा थी किं मैं राघवेन्द्र का युवराज्यभिषेक देखूं। मेरे जीते जी राघव युवराज बन जायं, पर कैकयी ने महाराज का मनोरथ समाप्त कर दिया, अब राम जी के वियोग में महाराज अपने शरीर को नहीं रख पायेंगे। ऐसे अनेक प्रकार के विचार सुमित्रा जी कर रही हैं परन्तु फिर तुरन्त ही ध्यान गया कि अरे! यह मैं क्या कर रही हूं।

ये सब बानर उनके बच्चे हैं अतः "देखहिं कपि जननी की नाईं" इन बच्चों की मां बनकर पैदल चलकर ही आये।

इन्हीं बानर शिशुओं के साथ तथा अनुज लक्ष्मण व सखा सुग्रीव, विभिषण जी के साथ श्रीराम लंका चौगान में खेलने जायेंगे यह बात सुमित्रा जी प्रथम से ही जानती थीं फिर भी लक्ष्मण जी के द्वारा दिये गये कठोर समाचार से सुमित्रा जी काँप उठीं। गोस्वामी जी कहत हैं,

समुझि सुमित्रां राम सिय, रूपु सुसीलु सुभाउ
नृप सनेहु लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ ॥

सुमित्रा जी श्री सोताराम जी के रूप, शील एवं स्वभाव का स्मरण करने लगीं कि क्या अनर्थ हो गया! क्या इतना सुन्दर रूप, इतना श्रेष्ठ शील, इतना मधुर स्वभाव क्या वन के योग्य हैं? महाराज के स्नेह का ध्यान आते ही वे सिर पिटने लगीं अरे अरे! इस पापिनी ने बुरी तरह घात लगाया।

सुमित्रा जी तेज की खान हैं अतः कैकयी से छोटी होने पर भी कैकयी के प्रति आक्रोश कर देती हैं मां कौशल्या जी के सामने जब राघवेन्द्र का इशारा पाकर सचिवपुत्र अभिनन्दन जी सारी कथा सुनाते हैं तब भी कौशल्या जी के, आक्रोश नहीं आता उन्होंने कहा कि यदि माता—पिता दोनों की आज्ञा हो तो आपके लिये वन शत अवध के समान हैं।

जौं पितु मातु कहहिं बन जाना।
तौं कानन सत अवध समाना॥

किन्तु तेजस्वरूपा होने के कारण सुमित्रा जी को आक्रोश आ ही जाता है। उन्होंने तुरन्त कहा कि इस पापिनि ने सबसे बड़ा अनर्थ कर दिया कि महाराजा चक्रवर्ती के प्रेम की हत्या कर दी। महाराज की इच्छा थी कि मैं राघवेन्द्र का युवराज्याभिषेक देखूं मेरे जीते जी राघव युवराज बन जायँ, पर कैकयी ने महाराज का मनोरथ समाप्त कर दिया, अब राम जी के वियोग में महाराज अपने शरीर को नहीं रख पायेंगे। ऐसे अनेक प्रकार के विचार सुमित्रा जी

कर रही हैं परन्तु, तुरन्त ही ध्यान गया कि अरे। यह मैं क्या कर रही हूं ? इस प्रकार का पश्चाताप करने का यह अवसर नहीं है, यदि मैं लक्ष्मण को आज्ञा नहीं देती तो इनकी यहीं मृत्यु हो जायगी। महाराज की मृत्यु तो होनी ही हैं साथ साथ लक्ष्मण भी नहीं रह पायेंगे बहुत अनर्थ हो जायेगा।

धीरज धरेउ कुअवसर जानी।
सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥

कुसमय जानकर धैर्य धारण किया और स्वभाव से ही हित चाहने वाली सुमित्रा जी कोमल वाणी से बोली, क्योंकि।

धीरज धरम मित्र अरु नारी।
आपत काल परिखिअहिं चारी॥

आपत्तिकाल में ही धैर्य की परीक्षा होती है। सुमित्रा जी के लिये गोस्वामी जी विशेषण दे रहे हैं "सहज सुहृद्" जो स्वाभाविक ही हित करने वाली हैं पाणिनीय व्याकरण में सुहृद शब्द की इस प्रकार व्याख्या कही गई है, "सुहृद दुहृदौ मित्रामित्रयोः" मित्र के अर्थ में सुहृद् शब्दका तथा अमित्र के अर्थ में दुहृद् शब्द का प्रयोग होता है।

यहां गोस्वामी जी कहना चाहते हैं कि सुमित्रा जी सहज ही जन्मजात जीव की सुन्दर मित्र हैं मित्र वही है जो निरन्तर हित की इच्छा करता हो। सुमित्रा जी लक्ष्मण जी की मित्र हैं मित्र याने जो मिलने पर त्राण करें। सुमित्रा जी ने सोचा कि अब तो अयोध्या में की नदी में बाढ़ आने वाली है यदि लक्ष्मण रहेंगे तो वे डूब जायेंगे। अतः इन्हें अब यहां से दूर बन में भेजना चाहिये। इसलिये वह बहुत मधुर वाणी में लक्ष्मण जी को समझा कर कहती हैं,

धीरज धरेउ कुअवसर जानी।
सहज सुहृद् बोली मृदु बानी॥

क्या बोली वह आगे बतायेंगे।

॥ इति शम् ॥

॥ श्री राघवः शान्तनोतु ॥

षष्ठ कुसुम

कौशल्या परिलालितां गुणवतीं वात्सल्यवारान्निधे।
बेलां वेलितमानसां शुचिमतिं माधूर्यसंस्थिताम् ।१।
अङ्के कृत्य जगन्निवासमनघं सन्लालयन्तीं मुदा।
वन्दे लक्ष्मणमातरं भगवतीं देवीं सुमित्रामहम् ।२।

देवीं सुमित्रां माभिवन्दमानं।
तं व्यापकं ब्रह्म नि:सर्व सौम्यम्॥
खेलन्तमीशं नवकंज नेत्रम्।
श्री राघवं भावय रामभद्रम्॥

नीलाम्बुज श्यामलकोमलागं सीतासमारोपितवामभागं।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम्॥

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो वैशणवेभ्यो नमोनमः॥

श्री सीतानाथ समारम्भां श्रीरामानन्दार्यमध्यमाम्।
अस्मदाचार्यपर्यन्तां वन्दे श्रीगुरु परम्यराम्॥
नीलतामरसदाम रुचि चित्रकूट कृतधाम।
निजपदकमले मधुपमिव रमय मनोममराम॥

गौर किसोर वेष वर काछे।
कर सर चाप राम के पाछे॥
लछिमन नाम राम लघु भ्राता।
सुनु सखि तासु सुमित्रा माता॥

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा मर्यादा पुरुषोत्तम परब्रह्म वेदान्तवेद्य सकल शास्त्रार्थ प्रतिपाद्य भगवान् श्रीमद् चित्रकूट विहारी प्रभु श्री रामभद्रजु की कृपा से श्रीराम कथा मन्दाकिनि में आशिरस्क निमज्जन कर हम अपने तापत्रय की शान्ति का प्रयास कर रहे हैं।

रामचरित मानस में तीन विशिष्ठ नगरों का वर्णन मिलता है अवध, मिथिला एवं लंका। यही तीन नगर हमारी तीन मान्यताओं की ओर संकेत करते हैं। श्री अयोध्या यह भगवान् का ध्यान नगर है

मज्जहिं सज्जन वृन्दबहु पावन सरजू नीर।
जपहिं राम धरि ध्यान उर, सुन्दर स्याम सरीर॥

अयोध्या में भगवान का ध्यान किया जाता है। इसकी व्युत्पत्ति भी इसी अर्थ की ओर संकेत करती हैं।

अयोवत् ध्यायन्ति श्रीरामं जनाः यस्यां सा अयोध्या।

जिसमें लोह के समान निस्चेष्ट होकर लोग परमात्मा का ध्यान करते हैं, उसी नगरी को अयोध्या कहते है।

दूसरा नगर है मिथिला, इसको ज्ञान नगर कहा जा सकता है। यहाँ भगवद् गुणगान भी होता है और प्रभु के ऐश्वर्य का ज्ञान होता है यही एक ऐसा नगर हैं कि जहां गाली को भी गाया जाता है यहां नारियाँ मैथिली के प्रणवल्लभ दुल्हा सरकार को गारी गाती हैं। एक सखी ने कटाक्ष करते हुए कहा, कि अरि सखि! क्या तुम पागल हो गई हो, मर्यादा पुरुषोत्तम, वेदान्तवेद्य अचिन्त्य अखण्ड अनन्त नित्यमुक्त बुद्ध पुरुष को गारी दे रही हो!!

"पुरुषोत्तम को गारी कैसी ?"

दूसरी सखी ने कहा, तुम ससुराल के वास्तविक रहस्य से अनिभिज्ञ हो

"गारी बिनु ससुरारी कैसी"

तात्पर्य यह है कि एक ओर तो मिथिलाधिराज महाराजा जनक विश्वामित्र जी के पास आकर ब्रह्म जिज्ञासा करते हुए श्री

राम के ऐश्वर्य का ज्ञान करते हैं तो दूसरी ओर प्रेम पिपासु मिथिला की सीमन्तिनिया श्री राम के माधुर्य का गान करती हैं अतएव यह कहना सुतरां सुसंगत होगा कि मिथिला यह भगवत् गुणगान नगर भी है। और भगवत् ऐश्वर्य ज्ञान नगर भी है।

तीसरा नगर है लंका। यह श्री राम का आह्वान नगर है यहां पर श्री राम को बुलाया गया था। इसलिये लंका शब्द की व्युत्पत्ति यही की जायेगी।

रं रामचन्द्रम् कायति आह्वयित या सा लंका।

जो रघुनाथ जी को ही युद्ध करने के लिये बुला लेती है वह लंका है। जिसे बुलाया जाता है उसका सन्मान किया जाता है। लंका नगरी ने प्रथम रामदूत को प्रवेश करने की आज्ञा दी

प्रबिसि नगर कीजे सब काजा।
हृदय राख कौशल पुर राजा॥

हनुमान जी को प्रवेश देने के लिए कदाचित् लंका नगरी ने ये विचार किया होगा कि मुझे रघुनाथ जी को बुलाना है परन्तु अभि प्रभु के लिये मन्दिर नहो वन पाया यदि बनाया भी जाय तो प्रभु के योग्य मन्दिर नहीं बन सकेगा क्योकि प्रभु नीलमणि है और नील मणि के लिये सुवण मन्दिर चाहिये पर लंका का स्वर्ण रावण के द्वारा अपवित्र कर दिया गया है इसलिये यह राघवजी के लिये उप युक्त नहों रहा। दूसरी बात यह है कि लका का स्वर्ण मन्दिर जड है उसमें चेतन परब्रह्म को नहीं पधराया जा सकता जब लंकिनि ने हनुमान जी रूप चेतन स्वर्ण मन्दिर को देखा तब सोचा कि प्रभु के लिये यह मन्दिर ही योग्य है उसने हनुमान जी से कहा कि आप रघुनाथ जी के मन्दिर बनकर लंका में बिराजो अब आपके ही हृदयान्तर में प्रभु पधार करके मेरा स्वप्न साकार करेंगे। अर्थात लंकिनि ने प्रथम अपनी नगरी में श्री राम के मन्दिर रूप हनुमान जी को पधरवाया पश्चात रघुनाथ जी को बुलाया।

भद्र व्यक्ति को जब बुलाया जाता है तब उसकी अगवानी के लिये कुछ खाद्य सामग्री उपस्थित की जाती है। लंका के वृक्षों ने सोचा कि रावण तो आपका कोई स्वागत कर नही रहे है अत:

लीजिए हम ही फल देकर आपका स्वागत करेंगे आपके वानर भालू भूखे होंगे उनको हम फल खिलायेंगे, ।

सब तरु करे राम हित लागी।
रिपु अनरिपहि काल गति त्यागी ।।

सम्पूर्ण वृक्ष रघुनाथ जी के लिए फल देते हैं इससे सिद्ध हुआ कि लंका में रघुनाथ जी को बुलाया गया अत: इसको हम वैचारिक दृष्टि से श्री राम की आह्वान नगरी कह सकते हैं।

इन तीनों नगरियों में मिथिला का सम्बन्ध हमारे वक्तव्य से है मिथिला ज्ञान नगरी के साथ साथ भगवत् गुणगान नगरी भी है। भगवत् गुणगान करती हुई मिथिला की ललनाये आज एक ऐसी व्यक्तित्व सम्पन्ना अवध ललना की प्रशंसा कर रही हैं जिनके विषय में जितना भी कहा जाय सर्वदा अपर्याप्त है। सखी को सचेत करती हुई सखी कहती है कि आलि सुनो लक्ष्मण कुमार की माता सुमित्रा हैं।

सखी के वक्तव्यका बड़ा ही गंभीर अर्थ है। सखी व्यजनामें कहना चाहती है कि सुनो, अन्य मातायें तो कुमित्रा होती हैं जो अपने बालक को भोग में फंसाकर नरक के द्वार में ले जाती है पर धन्य है सुमित्रा जो अपने पुत्र को नरक के द्वार से हटाकर नरकान्तक प्रभु के श्री चरण से जोड़ रही है। ये महाराज दशरथ की तीनों महीषियों में छोटी रानी हैं। अवध के शासन सूत्र का कार्य कैकेयी करती हैं। भगवती कौशल्या अन्य व्यवस्था को देखती हैं किन्तु घरेलु कार्य भार का पूरा भार सुमित्रा ही संभालती हैं। सम्पूर्ण भार को संभालने के साथ साथ सुमित्रा जी अपने दोनों पुत्रों के मन को भी सजाती है ऐसा शायद ही किसी माता ने सजाया होगा।

श्री राम वनवास के समय लक्ष्मण कुमार माँ से विदा मांगते हुए करबद्ध खडे हैं। सुमित्रा जी कोमल वाणी में जो उपदेश देती हैं वही वैष्णवदर्शन का सार सर्वस्व है। मानो आज सुमित्रा जी लक्ष्मण कुमार को निमित्त बनाकर सम्पूर्ण बैष्णव दर्शन बता रही हैं।

सुमित्रा जो ने कहा वैष्णव दो प्रकार के होते हैं ब्रह्य वैष्णव अन्तः वैष्णव। ब्रम्ह वैष्णव तो तिलक स्वरूप एवं माला धारण

करने से हो जाते हैं पर आन्तर वैष्णव के लिये अर्थ पंचक को जानना आवश्यक होता है।

श्री रामानुजाचार्य ने एक ही श्लोक में बड़े ही संम्पूर्ण सिद्धान्तो को पिरोया हैं।

प्राप्तिश्च ब्रह्मणोरूपं प्राप्सिश्च प्रत्यगात्मन:।
प्राप्तयुपायं फलं चैवं तथा प्राप्तिविरोधि च ॥

सर्व प्रथम जीव को अपने स्वरूप को परिज्ञान करना होता है अनन्तर ईश्वर के स्वरूप को जानना पडता है पश्चात् प्राप्ति के फल का चिन्तन किया जाता है। इसप्रकार अर्थ पंचक के पांच भेद है

स्वस्वरूप, पर स्वरूप, उपाय स्वरूप, विरोधि स्वरूप एवम्, फलस्वरूप।

जीव का अपना क्या स्वरूप है?

इस तथ्य के समाधान में सर्व प्रथम इतना अवश्य जान लेना चाहिये कि जीव कभी भी भगवान् नहीं हो सकता। जीव परमात्मा का दास है ज्ञानियों में अग्रगण्य हनुमान जी महाराज स्वयं कहते हैं कि

"दासोऽहं कौशलेन्द्रस्य" में रघुनाथ जी का दास हूँ।

जीव परमात्मा नहीं बन सकता हां प्रयास करके परमात्मा का दास बन सकता है इसलिए जीव के लक्षण बताते हुए श्री राम जी स्वयं लक्ष्मण जू से कहते हैं

माया ईस न आपु कहुं जान कहिअ सो जीव।
बंध मोच्छप्रद सर्वपर माया प्रेरक सीव॥

जो माया को, ईश्वर को और अपने स्वरूप को नहीं जानता उसे जीव कहना चाहिये जो बन्धन और मोक्ष देने वाला सबसे परे और माया का प्रेरक है वह ईश्वर है।

वैष्णव सिन्धान्त की मान्यतानुसार जीव कभी ब्रह्म हो ही नही सकता। जीव की सत्ता ब्रह्म के साथ है जब तक जीव ब्रह्म के साथ

होगा तब तक उसे दु:ख रहेगा ही नहीं जिस समय से जीव ने ब्रह्म का साथ छोड़ा उसी समय से उसको दु:ख घेर लेता है

जीव जबते हरिलें बिलगान्यों तबते देह गेह निज जान्यो माया बस स्वरूप बिसरायो, तेहि भ्रम ते नाना दुख पायो —

(विनय पत्रिका)

सुखी मीन जहँ नीर अगाधा ।
जिमि हरि सरन न एकहुं बाधा ॥

गीताकार ने भी माया रहित जीव को जीव कहा है तथा माया वछिन्न जीव को जन्तु कहा हैं ।

ममेवांशो जीव लोके जीव भूत: सनातन: ।
मन: षष्ठानिन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ॥

(श्रीमद् भगवद् गीता १५–७)

माया से निर्मुक्त भगवान का अंश अर्थात् भगवान की कृपा प्रसाद का भोक्ता जीव है और भगवत कृपा से वंचित तथा माया से घिरा हुआ जीव नहीं अपितु जन्तु है,

आज्ञानेना वृतं ज्ञान तेन मुह्यन्ति जन्तव: ।

अत: यह कहा जा सकता है कि जोव वही है जो जानकी जीवन के लिये ही जीता है,

"जीवति जानकी जीवनाय य: स: जीव:" अर्थात जो अपनी प्रत्येक क्रिया रघुनाथ जी के लिये ही करता है वही जीव है नहीं तो जरि जउँ सो जीवन जानकी नाथ जिये जग जों तुम्हरो बिनु है

(कविता वली)

रघुनाथ जी की कृपा प्रसाद के विना जीव के जीवत्व को गोस्वामी सैध्धान्तिक रूप से नहीं मानते मनमें न बस्यो अस बालक जो तुलसी जग में फल कौन जिये ।

(कविता वली)

इसी सिध्धान्त पर भक्त शिरोमणि अन्तःचक्षु महात्मा सूरदास जी ने भी हस्ताक्षर किये हैं,

धन्य सूर एकहु पल या सुख का सत कल्प जिये —

अतः सिद्धान्ततः जीवन का स्वरूप भगवान का दासत्व ही है। सुमित्रा जी का कहना है कि इस सनातन जीव के माता-पिता भी सनातन परमात्मा ही हो सकते है अतः हे लक्ष्मण। अब तुम सच्चे रूप में जीवत्व को प्राप्त कर रहे हो, अब तुम्हारा सम्बन्ध मायिक माता-पिता से नहीं रहा, तुम माया से निर्मुक्त हो रहे हो। माया के कारण ही जीव में अनिश्चितता आती है अतः हे लक्ष्मण अब तुम अमर हो जाओगे तुम अमर माँ को स्वीकार लो, अमर मां वही हो सकती है जिसका देह से कोई सम्बन्ध नहीं होता आज से जो विदेहराज की कन्या वदेही है वही तुम्हारी माता है,

तात तुम्हारी मातु बैदेही।
पिता राम सब भांति सनेही॥

मानो सुमित्रा जी का एक व्यंग है, उन्होंने कहा लक्ष्मण तुम तो कह रहे थे कि

गुरू पितु मातु न जानउँ काहू।
कहउँ सुभाउ नाथ पति आहू॥

तो फिर यहां कैसे आ गये ? लक्ष्मण जी ने कहा माँ इसमें मेरा दोष नहीं है रावेन्द्र ने ही मुझे गुरु के पास भेजा है। सुमित्रा जी ने सोचा कि राघव ने गुरु रूप में मेरे पास लक्षमण को भेजा है तो गुरु का कर्तव्य है कि वे जीव को सनातन माता-पिता का परिचय कराये अतः गुरु की भूमि का निभाती हुई मां सुमित्रा कहती हैं कि आज से,

तात तुम्हारी मातु बैदेही।
पिता राम सब भांति सनेही॥

क्योंकि उचित यही है तुमने ही राघव के सामने कहा था कि

मैं सिसु प्रभु सनेहुं प्रतिपाला।
मंदरु मेरु कि लेहिं मराला॥

यदि तुम अपने को शिशु मानते हो तो तुम्हारे लिये युवती मां की अपेक्षा होगी सीता जी इस समय अठारह वर्ष की युवती के गोद में नन्हा सा शिशु शोभास्पद होता है बृद्धा माँ की गोद में एक दिन का बालक हास्यापद लगता है अतः आज से तुम्हारी माता सुमित्रा नही पर सीता जी है "तात तुम्हारी मातु बैदेही" यहाँ "तात" शब्द का बड़ा महत्वपूर्ण अर्थ है "तनोति सुमित्रायाः यशः सः तातः" जो सुमित्रा के यश को दिग दिगन्तर में फैलाये वह तात हैं। इसी प्रकार सीतावल्लभ श्री राम हो आज से तुम्हारे पिता है।

आगे सुमित्रा जी ने कहा,

जौं पै सीय रामु वन जाहीं।
अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥

नियम यही है कि बड़ा बालक माता-पिता को छोड़कर रह सकता है पर एक दिन का नवजात शिशु अपनी माँ को छोड़कर जीवित नही रह सकता जहां माता-पिता होंगे वहीं बालक होगा अतः लक्ष्मण ! आज सीता-राम वन में जा रहे हैं अतः अब अयोध्या में तुम्हारा कोई कार्य नहीं है।

रामभद्र प्रतिभावान् सिंह हैं और सीता जी अपने को सिंह वधू मानती है

को प्रभु संग मोहि चितवनि हारा।
सिंहवधुहि जिमि ससक सिआरा॥

सिंह सिंहणी कभी भवन के कटघरे में नहीं रहते वे तो स्वच्छन्द अरण्य में विहार करते हैं यदि सिंह एवं सिंहवधु वन में जा रहे हैं तो सिंह का बच्चा भवन में कैसे रहेगा ? लक्ष्मण ! तुम सिंह किशोर हो यथा,

अरुण नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहूं मत्त गजगन निरखि सिंघ किशोरहि चोप॥

जिस समय सीता जी ने राघवेन्द्र के गले में जय माला डाल दी उस समय राजाओं के बचन सुनकर लक्ष्मण जी ऐसे लग रहे है

उनके नेत्र लाल और भौंहें टेढी हो गयीं और वे क्रोध से राजाओं की ओर देखने लगे मानो मतवाले हाथियों का झुंड देखकर सिंह के बच्चे को जोश आ गया हो।

अतः हे लक्ष्मण ! अयोध्या में अब तुम्हारा कोई काम नहीं है यहां एक आध्यामिक संकेत भी है कि ब्रह्म के बिना जीव का क्या कार्य हो सकता है ? जहाँ ब्रह्म है वही जीव की सत्ता है

यही जीव का सच्चा स्वरूप है कि आनन्दकन्द से कोई न कोई सम्बन्ध स्वीकार करके उसी की भावना के अनुसार तन्मयता से सेवा करें। यह अर्थपचक की प्रथम भूमिका है।

अब माँ सुमित्रा जो अर्थपंचक की द्वितीय भूमिका बता रही हैं प्रत्येक वैष्णव को चाहिये कि सर्वप्रथम वह अपने स्वरूप को जाने उसके पश्चात् पर स्वरूप याने परब्रह्म परमात्मा के स्वरूप को जाने परमात्मा श्री राम कैसे हैं ?

रामु प्रानप्रिय जीवन जी के।
स्वारथ रहित सखा सब ही के ॥

श्रीराम प्राणो के प्रिय जीव के भी जीवन, निस्वार्थ तथा सबके सखा हैं।

परमात्मा ही सबके पिता है पर बालक के साथ वालक भी बनना जानते हैं जीवेभ्यः सह खेलति सः सखा, जो प्रत्येक जीवके साथ खेलता है वह सखा है। संसार के जितने सम्बन्ध है वे सभी स्वार्थ से भरे हुए हैं केवल परमात्मा प्रेम ही निस्वार्थ है। अतः हे लक्ष्मण संसार के जितने भी पूजनीय सम्बन्ध है उनको राघवेन्द्र के नाते से ही मानना है,

पूजनीय प्रिय परम जहां तें।
सब मानिअहिं राम के नातें ॥

सभी सम्बन्ध राम जी में ही समाहित कर लेने चाहिये। संसार में जीवका यही लाभ है। नही तो इस जीव को अनित्य नाश वान् एवं दुःखमय संसार में आने का प्रयोजन ही क्या था ? केवल

यह इसलिये आता है कि इस संसार में रघुनाथ जी अवतार लेते हैं अत: उसे उनके खेलने के लिये उपकरण बनना है इसलिये हे लक्ष्मण

अस जियं जानि संग बन जाहू ।
लेहु तात जग जीवन लाहू ॥

ऐसा मानकर राघवेन्द्र के साथ वन जाकर इस जीवन का दिव्य लाभ ले लो।

यहां तक मां सुमित्रा ने पर स्वरूप की चर्चा की। इतने प्यारे प्रभु को कैसे पाया जा सकता है? इसे बताते हुए माँ अब तीसरे ज्ञातव्य की ओर संकेत कर रही हैं,

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हारे मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥

सुमित्रा जी कह रही हैं कि मैं बलिहारी जाती हूं मेरे समेत तुम बड़े ही सौभाग्य के पात्र हूँ जो, तुम्हारे चित्त ने छल छोड़कर श्री राम के चरणों में स्थान प्राप्त किया है॥

परमात्मा को प्राप्त करने का यही उपाय है, उन्हें तीन वस्तुयें नहीं भाती,

निर्मल मन जन सो मोहि पावा।
मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥

कपट, छल एवं छिद्र ये तीन परमात्मा को नहीं भाते। दुर्भाग्य से मारीच ने इन तीनों को प्रस्तुत किया,

कपट : — तेहि बन निकट दसानन गयऊ।
तब मारीच कपटमृग भयऊ॥

छल : — प्रगटत दुरत करत छल भूरी।
एहि बिधि प्रभुहि गयउ लै दूरी॥

छिद्र : — लछिमन कर प्रथमहिं लै नामा।
पाछे सुमिरेसि मन महुं रामा॥

इन तीनों के कारण मारीच श्रीराम को नहीं भाया। यहां प्रश्न हो सकता है कि कपट, छल, छिद्रा ये तीनों होने पर भी भगवान् रामने मारीच को मोक्ष क्यों दिया ? इसमें मारीच को क्या नुकसान हुआ ?

इसका समाधान यह है कि इससे मारीच को बहुत बड़ी हानि हुई क्योंकि भगवान् का यह स्वभाव है कि यदि वे किसी पर नाराज होते हैं तो उसे अपना धाम दे देते हैं और यदि किसी पर प्रसन्न होते हैं तो स्वयं उसके हृदय में चले आते हैं।

रीझे बस होत खीझे देत निज धाम रे
फलत सकल फल कामतरु नाम रे......

मारीच को प्रभुने अपना धाम दिया इससे ,अनुमान लगा सकते हैं कि मारीच पर प्रभु खीझे हैं या रीझे हैं ?

बिपुल सुमन सुर बरषहिं गावहिं प्रभुगुनगाथ ।
निज पद दीन्ह असुर कहुं दीनबन्धु रघुनाथ ।।

प्रभुने मारीच को अपना स्थान दे दिया मानो कह दिया कि चलो एक कमरे में विश्राम करो मुझे परेशान मत करो जैसे माँ किसी बच्चे पर नाराज होती है तब उसको एक कमरे में बन्ध करके बाहर से ताला लगा देती है। उसी प्रकार भगवान् जब किसी पर नाराज होते हैं तो उसको साकेत के किसी एक कमरे में बन्ध करके ताला लगा देते हैं बस अब आवागमन से दूर रहो।

स्वाभाविकतया जिस बेटे पर पिता बहुत प्रसन्न होते हैं उसे अपने साथ रखते हैं।

सुमित्राजी कहती हैं लक्ष्मण! छल प्रभु के भजनमें बहुत ही बाधक है उनसे कुछ भी छिपाना नहीं चाहिये। क्योंकि परमात्मा सब कुछ जानते हैं,

राम झरोखा बैठ के सबका मुजरा लेत।
जैसी जाकि चाकरी वैसो वाको देत ।।

इसलिये अन्तर्यामी से कुछ छिपाना नहीं चाहिये उनसे कुछ छिपेगा ही नहीं,

स्वामी सर्वज्ञसों चले न चोरी चार की।
प्रीति पतिथानी पद रीति दरबार की ॥

अत: हे लक्ष्मण !

जो तुम्हरे मन छांडि छल कीन्ह राम पद ठांउ ॥

मानो सुमित्राजी कह रही हैं कि मन बड़ा पापी है ये दशों इन्द्रियों को दशों विषयों में फंसाता हुआ अपने लिये दशम दशा याने मृत्यु को आमन्त्रित करता है दशों इन्द्रियां दस प्रकार के विष देकर मनको मार डालती हैं परन्तु श्रीरामजी के चरण कमल में आने पर उनके चरण कमल के दस दस नखों की नखमणि चन्द्रिका से निकलता हुआ अमृत इस मनको मृत्यु से सर्वकाल के लिये दूर करके अमर कर देता है और ऐसे अमर पुत्र की गाथा से माता भी धन्य हो जाती हैं,

पुत्रवती जुबती जग सोई।
रघुपति भगत जासु सुत होई ॥

जिसका पुत्र रामजी का भक्त है वही युवती पुत्रवती है लक्ष्मण ! तुम्हारो रामभक्ति देखकर मेरी वृद्धावस्था चली गई है मैं पुन: युवती बन गई हूँ तुम्हारी जो चिन्ता है कि इस वृद्धावस्था में मेरी कौन रक्षा करेगा क्योंकि मेरा पुत्र वन में जा रहा है और वृद्धावस्था में पुत्र ही माँ की रक्षा करता है यथा,

पिता रक्षति कौमार्ये भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रस्तु..............न नार्यस्तु स्वतन्त्रता ॥

किन्तु अब मानो मेरी युवावस्था फिर से लौटकर आ गई है अत: मेरी तरुणता सुरक्षित है मेरे पति ही मेरी रक्षा करेंगे तुम्हारे रक्षण की कोई आवश्यकता नहीं रही इससे हे लक्ष्मण ! रामभक्त ऐसे पुत्र को पाकर मैं धन्य हो गई,

नतरु बांझ भलि बादि बिआनी।
रामबिमुख सुत तें हित हानी ॥

यदि ऐसा नहीं हुआ तो राम से विमुख पुत्र को जन्म देने से तो वह वंध्या ही रहे वही अच्छा है पशु की भाँति उसका ब्याना व्यर्थ ही है।

प्रश्न यह हो सकता है कि भगवत् भक्ति हीन पुत्र को जन्म देने में क्या मां का दोष है ?

इसका समाधान यह है कि जो हां मां के ही कुसंस्कारों से बालक कुसंस्कारी बनता है।

दु:शील मातृदोषेण, पितृदोषेण मूर्खता।
कार्पण्यं वंशदोषेण, आत्मदोषेण दरिद्रता॥

बालक का दु:शील होना मां के दोष का परिणाम है, मां यदि चाहे तो बालक भगवद् भक्त हो सकता है।

यही है उपायस्वरूप कि छल छोड़कर भक्ति करना। माँ सुमित्रा अब फलस्वरूप की चर्चा करती हैं,

सकल सुकृत कर बड़ फल एहु।
राम सीय पद सहज सनेहू॥

श्रीसीतारामजी के चरणकमलों में स्वाभाविक स्नेह ही सम्पूर्ण पुण्यों का बड़ा फल है।

श्रीराम स्वयं फल नहीं हैं वे तो प्राप्तव्य है फल तो उनके चरणारविन्द का स्नेह है। इसका तात्पर्य यह है कि लक्ष्मण ! तुम वन को जा रहे हो वन में बहुत सी वस्तु देखोगे, बहुत सी वस्तुओं का स्पर्श होगा, बहुत से शब्दों को सुनोगे, बहुतेरे लोगों से भाषण करने का योग भी होगा, किन्तु सावधान रहना अपने अन्तरंग को कहीं भी पिघलाना नहीं तुम्हारा अन्तरंग तो बस केवल श्रीसीतारामजी के चरणारविन्द में ही पिघले इसी में तुम्हारा सौभाग्य होगा।

सुमित्राजी का कथन है कि समस्त सुकृतों का फल है श्रीरामजी के चरणों का प्रेम किन्तु उसका भी बड़ा फल है श्रीसीतारामजी के चरणों का सहज स्नेह। युगलोपासना ही बड़ा फल है।

फलस्वरूप को समझाने के पश्चात् अब मां सुमित्राजी विरोधिस्वरूप को समझा रही हैं।

भगवान की प्राप्ति में माया विरोधिनी है। माया का अर्थ ही होता है मा+या अर्थात् "मा" याने नहीं 'या' याने जाना, भगवान् के शरण में मत जाओ। यह जीव को राग, रोष, ईर्षा, मद एवम् मोह इन पांच परिस्थितियों से रोकती है इसलिये कभी भी इनके बस तुम्हें नहीं होना है,

राग़ु रोषु इरिषा मदु मोहू।
जनि सपनेहुं इनके बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई।
मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥

राग, रोष, इर्षा, मद और मोह— इनके वश स्वप्न में भी मत होना। सब प्रकार के विकारों का त्याग कर मन, बचन और कर्म से श्रीसीतारामजी की सेवा करना।

लक्ष्मण! अब तुम्हें गृह के प्रति राग, कैकयी के प्रति रोष, वैष्णवों के प्रति ईर्षा, सेवा में मद तथा राघवेन्द्र के प्रति मोह कभी भी नहीं करना है।

यदि तुम्हारे जीवन में राग आयेगा तब तुम राघव के प्रति अनुराग नहीं पा सकोगे। यदि रोष आया तो राघव के परितोष को नहीं पाओगे। यदि तुम्हारे मन में ईर्षा आ जायेगी तो तुम्हें सेवा की इच्छा नहीं होगी। यदि मद आया तो इन्द्रियों का दमन नहीं होगा और यदि तुम मोह से मोहित हो गये तो रघुनाथजी का छोह तुम्हें नहीं प्राप्त होगा।

छिनु छिनु लखि सिय राम पद।
जानि आपु पर नेह॥
करत न सपनेहुँ लखन चितु।
बंधु मातु पितु गेहु॥

लक्ष्मण जी क्षण-क्षण पर श्री सीता राम जी के चरणों को देख-कर और अपने ऊपर उनका स्नेह जानकर, स्वप्न में भी भाइयों, माता-पिता और घर की याद नहीं करते।

रोष भी नहीं आया। भरतजी के प्रति जब रोष आया फिर भी अपने जोष को नहीं भूलते वे प्रभु से संग्राम के लिये आज्ञा माँगते हैं।

उठि कर जोरि रजायसु मागा।
मनहुं बीर रस सोवत जागा॥

लक्ष्मणजी कभी भी ईर्षा के वश में नहीं हुए, हनुमान जी के प्रथम मिलन के समय ही श्री राघवेन्द्र हनुमान जी से कहते हैं कि

सुनु कपि जियँ मानसि जनि ऊना।
तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना॥

हे कपि! मन में किंचित् मात्र भी ग्लानि मत करना तुम मुझे लक्ष्मण से दुगुने प्रिय हो।

इस कथन से लक्ष्मण जी को हनुमान जी के प्रति ईर्षा हो सकती थी वे सोच सकते थे कि चौदह बर्ष तक सेवा मैंने की और एक ही क्षण की भेंट से यह वानर मुझसे भी अधिक प्रिय बन गया। वे मुँह लटका सकते थे परन्तु माँ का उपदेश उन्हें स्मरण है अतः वे ईर्षा के वश में नहीं होते क्योंकि जिसके मन में ईर्षा आ जाती वह सेवा कर ही नहीं सकता। लक्ष्मण जी हमेशा रामजी के पीछे ही रहे हैं हनुमान जी आये फिर भी पीछे बैठते हैं, हनुमान जी एवं अंगद जी चरण दबा रहे हैं और लक्ष्मणजी पीछे बैठे हैं यथा,

बड़भागी अंगद हनुमाना।
चरन कमल चाँपत बिधि नाना॥
प्रभु पाछे लछिमन बीरासन।
कटि निषंग कर बान सरासन॥

उन्हें सेवा में कभी मद नहीं होता नित्य जागृत रह कर सेवा करते हैं।

लक्ष्मण कुमार को प्रभु के प्रति कभी मोह नहीं होता रामजी का सीताविषयक विलाप सुनकर एवं उनकी धर्म धुरीण मोह पक में फंस जाते हैं किन्तु लक्ष्मणजी उस स्थिति को भलीभाँति जानते हुए भी बारंबार प्रभु को समझाते हैं पर मोहित नहीं होते।

लछिमन समुझायें बहु भाँती।
पूँछत चले लता तरु पाँती॥

सुमित्राजी ने कहा स्वप्न में भी इनके वश नहीं होना लक्ष्मणजी ने सोचा कि माँ ने कहा है कि स्वप्न में भी इनके वश नहीं होना तो जागृत अवस्था में तो इन विरोधि स्वरूप का मैं नियन्त्रण कर सकूंगा परन्तु स्वप्नावस्था में मेरा कोई नियन्त्रण नहीं रहेगा अतः अब मैं सोउँगा ही नहीं जिससे स्वप्न का प्रश्न ही नहीं रहेगा तात्पर्य यही है कि विरोधि स्वरूप का सामना करने के लिये जीव को नित्य जागृत याने सावधान रहना चाहिये।

इस प्रकार अर्थपंचक समझाने के पश्चात् माँ सुमित्राजी कहती हैं कि इसके साथ तुम्हें तीन बातें भी समझनी होगी।

अनन्योपायत्व अगन्याईत्व अनन्यशेपत्व अनन्योपायत्व :— याने तुम एकमात्र राम से ही संचालित हो अतः

तुम कहँ बन सब भांति सुपासू।
संग पितु मातु राम सिय जासू॥

तुम्हारे साथ माता-पिता के रूप में सीता राम जी हैं तो तुम्हें वन में क्या क्लेश हो सकता है? पर तुम्हारी एक जिम्मेदारो होगी।

जेहि न राम बन लहहिं कलेसू।
सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

धन्य हैं माँ सुमित्रा, साधारण माँ कहती है कि तुम अपने शरीर की देख भाल करना अपने शरीर की व्यवस्था एवं रक्षा करना उसे संभालना पर यह माँ कह रहीं हैं कि तुम्हारा शरीर रहे चाहे न रहे पर तुम्हारे रहते रामजी को कोई क्लेश नहीं होना चाहिये यही मेरा उपदेश है। इससे बड़ा मित्रत्व और क्या हो सकता है?

आज माँ ने लक्ष्मणजी को आदेश निर्देश एवं उपदेश तीन दिये।

आदेश :—राग रोष इरिषा मद मोहू।
जनि सपनेहु इनके बस होहू॥

यह आदेश दिया।

निर्देश :— तुम्ह कहुं बन सब भाँति सुपासू।
संग पितु मातु राम सिय जासू॥

यह निर्देश दिया।

उपदेश :—जेहि न राम लहहिं कलेसू।
सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

माँ सुमित्राजी लक्ष्मणकुमार को तीन वस्तु और देंगी आशीष, सीख और वन जाने की आज्ञा।

उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहिं।
पितु मातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति बन बिसरावहि॥
तुलसी प्रभुहिं सिख देइ आयसु दीन्ह पनि आसिष दई।
रति होउ अविरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥

माँ सुमित्राजी कहती है कि हे तात, मेरा यही उपदेश है तुम वही करना जिससे बन में तुम्हारे कारण श्रीराम और सीताजी सुख पावें तथा पिता माता, प्रिय परिवार एवं नगर के सुखों की याद भूल जायँ। इस प्रकार लक्ष्मणजी को शिक्षा देकर माँ ने वन जाने की आज्ञा दी और फिर यह आशीर्वाद दिया कि श्रीसीताजी तथा श्रीरघुवरजी के चरणों में तुम्हारा निर्मल एवं प्रगाढ़ प्रेम नित्य नूतन हो।

उपदेसु यहु जेहिं तात तुम्हरे राम सिय सुख पावहीं।
पितु मातु प्रिय परिवार पुर सुख सुरति बन बिसरावहीं॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अविरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई॥

आशीर्वाद भी कितना अच्छा दिया कि रामजी के चरण-कमल में अविरल, अमल एवं नित्य नूतन रति हो अर्थात् जाग्रतावस्था में

अविरल रति हो, स्वप्नावस्था में अमल-रति हो तथा सुषुप्ति अवस्था में नित्य नूतन रति हो जो कभी भी पुरातन न हो जाय।

अन्य मातायें अपनी सन्तान को आसक्ति देती हैं पर माँ सुमित्रा ने अपने पुत्र को जगत के प्रति अनासक्ति, भोगों के प्रति विरक्ति तथा रघुनाथ जी के गति अनुरिक्त दी।

माता ने अपने बालक को रघुनाथ जी के चरणो में समर्पित करके अपना मित्रत्व पूर्ण किया।

माता शत्रुः पिता बैरी न बालो येन पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये बको यथा॥

जो अपने बालक को सुसंस्कार नहीं देते वो माता-पिता पुत्र के शत्रु और बैरी के समान हैं वह बालक विद्वानों की सभायें वैसे ही सुशोभित होता है जैसे हंसों की सभा में बगला।

आज माता सुमित्रा ने लक्ष्मणजी को ऐसी शिक्षा दी कि जिससे वे समस्त जीवों के आचार्यत्व को प्राप्त कर सके।

❀ श्री राघवः शन्तनोतु ❀

सप्तम कुसुम

"मंगलारण"

नीलाम्बुज श्यामलकोमलाङ्ग सीता समारोपित वमभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामिरामम रघुवंश नाथम् ॥१॥

जयति जगतिजननीनाम् जनिबृति मुन्नाममनति मोघबोधा ।
दिव्या देवि सुमित्रा लक्ष्मण माता सुविख्याता ॥२॥

वीरवानर मुख्यानाम् प्राण रक्षा धृतव्यतम् ।
राम भक्त वरम् धीरम् हनुमन्तमुपासमयम् ॥३॥

श्री गुरु चरण सरोज रज, निज मन मुकुर सुधार ।
बरिणौ रघुवर विमल यश जो दायक फल चार ॥

गौर किसोर वेष बर काछे ।
कर सर चाप राम के पाछे ॥
लक्ष्मिन नाम राम लघु भ्राता ।
सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ॥

परमकारुणिक पुण्डरीकनयन मिथिलाललाम ललनालालित मंगलमय सौन्दर्यसारसर्वस्व, वसुमतिललाम लोकाभिराम कोटिमन्मथाभिराम, सकलजनमनोभिराम, निखिललोचनाभिराम, मर्यादापुरुषोत्तम, भगवान् श्रीरामभद्रजु की भुवनपावनी कृपा के रमणीय परिणाम के अनुसार आज हम उस आर्यसीमन्तिनीललाम के विषय में चर्चा करने जा रहे हैं। जिनकी चर्चा ज्ञाननगर की परम भावुक स्त्रियाँ स्नेहासिक्त कण्ठ से कर रही हैं।

मिथिला में लोकाभिराम श्रीमद राम पधारे। उनके दर्शन के लिये उत्सुक नरनारियों की मन:स्थित का वर्णन करते हुए गोस्वामीपाद गीतावली में कहते हैं।

तुलसी सुनत एक एकन्ह तें चले विलोक-निहारे।
मूकन्ह बचन लाभ मानो अन्धन्ह लहें हैं विलोचन तारे।

प्रभु के दर्शन को इतने उत्सुकता से जा रहे हैं मानो मूकों को बचन का लाभ और मानों अन्धो ने नेत्र के तारे प्राप्त किये।

निराकारवादी होने से इनके नेत्रों को कोई सफलता नही मिली हैं अतः गोस्वामीजी उन्हें अन्धे कह रहे हैं। वे आँखे किस कामकी जिनसे कौशल्यानन्दवर्धन की मुख माधुरी को न निहारा हो।

जिन्ह कानन राम कथा न सुनी उन्ह कानन को अब लेखिये का।
जिन्ह बातन राम कथा न कही उन्ह बातन बात परेखिये का।।
जिन्ह माथन राम न यो न कहुं उन्ह माथन को अब पेखिये का।
जिन्ह आंखिन में वह रूप बस्यो उन आंखिन्ह तें अब देखिये का।।

मानो चक्षुओं का एकमात्र यही श्रेष्ठ लाभ है कि वे रघुनाथजी के मंगलमय रूप को निहारती रहें। आज तक मिथिलानियाँ वेदान्ती होने के कारण मौन थीं क्योंकि उनका ब्रह्म अनिर्वचनीय था, पर जब उनका अनिर्बचनीय ब्रह्म सगुन साकार बनके आया तो मिथिलानियों के चर्चा का विषय बन गया। आज सखीको वाचाल होने का लाभ हुआ सखी इस लाभ को छोड़ना नहीं चाहती। परमात्मा की कृपा की प्राप्ति को परमात्मा के परम अन्तरंग उपासक से ही जोड़ना चाहिये।

सुमित्रा जी धन्य हैं क्योंकि धन्य वही है जिसको राघवेन्द्र बार बार 'स्मरण करते हों जो रघुनाथ जी की स्मृति में आ गया उसी का जीवन धन्य हो गया। सभी लोग श्रीराम का स्मरण करते हैं पर भगवान राम बारबार सुमित्राजी के विषय में कौशल्याजी से प्रसन्न मुद्रा में पूछते हैं।'

"पूँछी बूझी हौ न बिहँसी मेरे रघुवर कहां री सुमित्रा माता"

भगवान् का इतना लगाव है सुमित्राजी से जिसका संवरण वे स्वयं नहीं कर सकते जब कि प्रभु का स्वभाव अत्यन्त गोपनीय एवं संकुचित है।

सुमित्रजी उपासना की आत्मा हैं "सुमित्रोपासनात्मिका" अर्थात् उपासना ही है आत्मा जिसकी वह है, सुमित्रा। तात्पर्य यह है कि जैसे आत्मा शरीर में ही रहता है, उसी प्रकार उपासना सुमित्राजी में ही रहती है। उपासना के बिना जीव को सुपास नहीं मिलता। उपासना हो जीव की भुभुक्षा को मिटाती है। आज सुमित्रा जी ने लक्ष्मणजी की भुभुक्षा को मिटाकर मुमुक्षा जगा दी। माता जी के चरणों में सिर नवाँकर रघुनाथ जी का साथ पाकर लक्ष्मणजी अब सदा सदा के लिये निःशंक हो गये।

कौशल्याजी का सुमित्राजी से बहुत नैकट्य है इसलिये कि कौशल्याजी ज्ञान शक्ति हैं और सुमित्राजी उपासना है। ज्ञान को उपासना की आवश्यकता होती है बिना उपासना के ज्ञान को जीवन शक्ति नहीं मिल पाती। यथा,

सोह न राम प्रेम बिनु ज्ञानू।
करनधार बिनु जिमि जल जानू॥

श्री राम के प्रेम बिना ज्ञान की शोभा नहीं लगती श्रीराम वनगमन के पश्चात् कैकेयी की व्यथा को कौशल्याजी कितनी अन्त-रंगता से सुमित्राजी के समक्ष कहती हैं।

शिथिल सनेह कहैं कौसिला सुमित्राजू सों,
मैं न लखी सौति सखी! भगिनी ज्यों रोई हैं।
कहै मोहि मैया कहौं मैं न मैया भरत की,
बलैया लेहौं भैया तेरी मैया कैकेयी है।
"तुलसी" सरल भायँ रघुरायँ माय मानी,
काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है।
बाम विधि मेरो सुख, सिरिस सुमन सम.
ताको छल-छुरी कोह-कुलिस लै टेई है॥

[कवितावली-अयोध्याकाण्ड—३]

कौशिल्या जी प्रेम से विह्वल होकर सुमित्रा जी से कहतीं हैं—हे सखि! मैंने कैकेयी को कभी सौत नहीं समझा सदा अपनी बहिन के समान उसका पालन किया। जब राम मुझको मैया कहते थे तो मैं यही कहती थी, "मैं तेरी नहीं भरत की माँ हूँ। भैय्या!

बलैया लेती हूं तेरी माता तो कैकेयी है। रामजी ने भी सरल भाव से मन-बचन-कर्म से कैकयी को माता ही माना कभी विमाता नहीं समझा परन्तु वाम विधाता ने हमारे सिरस सुमन सदृश सुकुमार सुख को काटने के लिये छलरूपी छूरी को वज्र पर पैनाया है।

आज ज्ञान ने उपासना के समक्ष अपने मर्म को खोल दिया। इस करुण व्यथा को सुनकर सुमित्रा जी ने जिस सिद्धान्त को यहां प्रस्तुत किया वह निश्चित ही भारतीय वाङ्मय का पाथेय बनेगा, सुमित्रा जी कौशल्या के चरणों को स्पर्श करके कहती है कि,

कीजै कहा जीजी जू ! सुमित्रा परि पायं कहै,
तुलसी सहावै विधि सोई सहियतु है।
रावरो सुभाउ रामजन्म ही ते जानियत,
भरतकी मातु को की ऐसो चहियतु है।
जाई राजघर, व्याहि आई राजधर माहँ,
राज-पूत पाएहूँ न सुखु लहियतु है।
देह सुधा गेह ताहि मृगहूं मलीन कियो,
ताहू पर बाहु बिनु राहु गहियतु है ॥

[कबितावली-अयोध्याकाण्ड-४]

बहिन जी ! क्या किया जाय ? विधाता जो कुछ सहाता है वह सहना ही पड़ता है। आपका स्वभाव तो रामजी के जन्म ही से जाना जाता है, परन्तु भरत की माता को क्या ऐसा करना उचित था ? तुमने राजा के घर में जन्म लिया, राजा के घर में व्याही गयीं, राज्याधिकारी सर्वज्येष्ठ पुत्र भी पाया, पर तो भी तुम सुखलाभ न कर सकी। देखो चन्द्रमा का शरीर अमृत का आश्रय है किन्तु उसे मृग ने कलकित कर दिया और ऊपर से बाहुरहित राहु भी उसे ग्रस लेता है।

धन्य है सुमित्रा। रामजी की माता को भी समझाने का भार सुमित्रा जी पर है। माता और पुत्र दोनों ही विचित्र हैं। रामजो जब दुःखी होते हैं तब उहें लक्ष्मणजी समझाते हैं।

लछिमन समुझावत बहु भाँती।
पूछत चले लता तरु पाँती॥

और कौशल्याजी जब दुःखी होती हैं तब उन्हें सुमित्राजी आश्वासन देती हैं। क्योंकि उपासना ही ज्ञान को क्षोभ से रहित कर सकती हैं। उपासना का स्वभाव समर्पणात्मक होता है वह परमात्मा के विधान में हस्तक्षेप नहीं करती। जहां हस्तक्षेप होता है वहाँ वासना है उपासना नहीं।

एक बार गोपियों ने मिलकर कृष्णचन्द्र की बंसी से पूछा कि हे बंशी! हमारी एक जिज्ञासा है कि यदि तेरे स्वरूप को देखा जाय तो ऐसा लगता है कि तुझमें कोई योग्यता नहीं है तेरी जाति भी अति निकृष्ट बाँस की, तुझे काटा गया आग की चिनगारियों से सात सात स्थानों पर दाग कर तुझमें छिद्र किये गये अन्दर से तू पोली। इतना होने पर भी कृष्णचन्द्र को तू इतनी प्रिय क्यों हैं? कि वे तुझे निरन्तर अधर सुधा का पान करवाते हैं अपनी कुटिल मेचक अलकावलियों से पंखा डालते हैं, अपने कोमल कोमल कर कमल से तेरे पैर दबाते हैं, नेत्र ज्योति से तेरी आरती उतारते हैं और तेरे न रहने से बैचेन हो जाते हैं।

बंसी ने कहा इसमें रहस्य यह है कि मैं निरन्तर एक बात का ध्यान रखती हूँ कि मैं श्रीकृष्ण की इच्छा का प्रतिवाद नहीं करती कृष्ण जैसा चाहते हैं मैं वैसे ही रह लेती हूं। वे जैसा राग बजाते हैं मैं वैसे ही बज लेती हूं। अतः मैं श्रीकृष्ण की प्रियपात्र बन सकी।

तात्पर्य यही कि उपासक को काया की छाया बनकर रहना पड़ता है इसलिये दैवी विधान में किसी प्रकार का हठ नहीं किया जाता इसी सिद्धान्त को सुमित्राजी ने भी बहुत ही स्पष्ट रूप से समझाया।

इस प्रसंग की स्पष्टता के लिये भागवत का एक श्लोक उदाहरणीय है। ब्रह्माजी भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए कहते हैं कि,

तत्तेऽनुकम्पां सुसमीक्षमाणो
भुञ्जान एवात्मकृतं विपाकम्
हृद्वाग्वपुर्भिर्विदद् धन्नमस्ते
जीवेत यो मुक्तिपदे स दायभाक्
[श्रीमद् भागवत १०-१४-८]

जो व्यक्ति अपने किये हुए कर्म के फल को भोगता हुआ, परमात्मा को नमस्कार करता हुआ क्षण क्षण भर बड़ी उत्सुकता से आपका कृपा का अनुभव करता रहता है और प्रारब्ध के अनुसार जो कुछ सुख या दुःख प्राप्त होता है उसे निर्विकार मन से भोग लेता है तथा जो प्रेम पूर्ण हृदय गद्गद् वाणी और पुलकित शरीर से अपने को प्रभु के चरणों में समर्पित करके अपने जीवन को व्यतीत करता है वह ठीक वैसे ही आपके परम पद का अधिकारी हो जाता है जैसे अपने पिता की सम्पत्ति का पुत्र अधिकारी होता है।

अपने किये हुए कर्म के फल के प्रति कभी भी उदासीन नहीं होना चाहिये। परमात्मा से कर्म के फल में किसी प्रकार की छूट नहीं अपितु उसे भोगने की शक्ति मांगनी चाहिये।

यहाँ जिज्ञासा हो सकती है कि भोगने में क्या सामर्थ्य बताया गया जो सिर पर पड़ती है उसे भोगा ही जाता है ?

इसका समाधान यह है कि कर्म के फल को रोकर भोगने में कोई बुद्धिमत्ता नहीं है क्योंकि यदि कर्म के फलानुभव में पीड़ा का अनुभव होने लगेगा तो उस समय पीड़ा में ईश्वर की स्मृति समाप्त हो जायेगी और भगवान् का विस्मरण ही सबसे बड़ी विपत्ति है इसलिये भगवान् हमारे प्रत्येक कर्म के फल को हमें निःसंकोच दें पर वे हमारे ऊपर इतनी कृपा बनाए रखें कि उस कर्म के फल को भोगते समय कहीं हम उन्हें न भूलने पायें।

प्रतिकूल कर्म का फल प्राप्त होने पर कभी भी आत्महत्या का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। यदि शरीर समाप्त हो जायगा तो पुनः दूसरा शरीर लेकर दण्ड भोगना पड़ेगा। इसलिये जीवित रहना चाहिये। यदि जीव अपने कर्म के फल को हँसते हुए भोग लेता है तो निश्चित ही परमात्मा उस पर कृपा करते हैं।

सुमित्राजी ने कौशल्याजी से यही कहा आप इस कर्मफल को हँसते हुए भोग लीजिये चौदह वर्ष की प्रतीक्षा के पश्चात् श्रीराम अयोध्या लौटकर अपने कमल समान कोमल करों से आपके चरणों को दबायेंगे।

पुजस्तेवर्दःक्षिप्रम अयोध्याम पुनराऽगतः।
पाणीभ्याम मृदुपीनाभ्याम चरणौपीऽयस्यति ॥
[श्री वाल्मीकीय रामायण अयोध्याकाण्ड ४४/२९ श्लोक]

विपत्ति में भगवान् का स्मरण विशेष रूप से होता है इसलिये कुन्तीजी ने भगवान् कृष्ण से विपत्ति ही मांगी थी,

विपदः सन्तु नः शश्वतज तज जगद्गुरो।
भवतो दर्शनं यत्स्याद पुनर्भव दर्शनम ॥
[श्रीमद् भागवत प्रथम स्कन्ध ८ वाँ अध्याय २५ वाँ श्लोक]

अर्थात् हे जगद्गुरू योगेश्वर त्रिभङ्ग ललित हमको प्रत्येक योनि में अथवा प्रत्येक परिस्थिति में घोरातिघोर विपत्तियां आ-आकर सताती रहें। पर उस समय भी आपकी रूप माधुरी के पान का सौभाग्य मिलता रहे जिससे हमें पुर्नभव अर्थात् घोर संसार सागर का शुन्यवट दृश्य न बिचलित कर पाये।

संसार में जितनी मात्रा में अनुकूलता बढ़ती जायेगी उतनी ही मात्रा में भजन की प्रतिकूलतायें बढ़ती जायेगी इसी सिद्धान्त को सुमित्रा जी समझा रही हैं। आज स्वयं उपासना ही उपासना की व्याख्या कर रहीं हैं।

सुमित्रा जी राघवेन्द्र को परमात्म भाव रूप में मानने पर भी पुत्र भाव को भी दृढ़ रखती हैं।

भगवान श्रीरामजी को मिलने के लिये सभी मातायें गई तो सुमित्राजी भी गई श्रीरामजी अपनी माताओं 'को कितने प्रेम से मिल रहे हैं वह चित्रण दृष्टव्य है।

प्रथम राम भेंटी कैकेई।
सरल सुभायँ भगति मति भेई॥
गहि पद लगे सुमित्रा अंका।
जनु भेंटी सम्पति अति रंका॥
पुनि जननी चरननि दोउ भ्राता।
परे प्रेम व्याकुल सब गाता॥

माताओं को मिलने का क्रम बहुत मधुर है। पहले श्रीराम कैकेयी से मिलते हैं उसके पश्चात् सुमित्रा जी से अनन्तर कौशल्याजी से मिले।

यहां जिज्ञासा हो सकती है कि ऐसा क्यों किया? प्रथम कौशल्याजी से क्यों नहीं मिले?

समाधान यह है कि भगवान् राम वैदिक धर्म का पूर्ण अनुमोदन कर रहे हैं, क्योंकि वेद ने पहले कर्म को ही प्राथमिकता दी है कर्म के पश्चात् उपासना तथा उसके अनन्तर ज्ञान का वर्णन किया है। अत: इसी क्रम की रक्षा करते हुए श्रीराम प्रथम क्रिया शन्ति रूप कैकयी से, पश्चात् उपासना रूप सुमित्रा से तत्पश्चात् ज्ञान शक्ति रूप कौशल्या से मिलते हैं। यहां पूर्णरूपेण वैदिक पद्धति का अनुसरण हुआ है।

श्री चित्रकूट धाम में दोनों माताओं के मध्य में प्रभु राम सुमित्राजी से मिल रहे हैं। उपासना शालग्राम भगवान् की भांति होती है जो ज्ञान एवं कर्म इन दोनों से सम्पुटित होता है। आज सुमित्रा के साथ मिलने पर श्रीराम के व्यवहार को देखिये,

गहि पद लगे सुमित्रा अंका।
जनु भेंटी संपति अति रंका॥

कैकयी को श्रीराम ने केवल भेटा फिर चरण में गिर पड़े तथा उन्हें प्रबोध कराया। कौशल्या जी के चरण में भी केवल गिरे पर सुमित्राजी के लिये कहते हैं कि रघुनाथजी ने पहले तो सुमित्राजी के चरणों को पकड़ा पश्चात् जाकर सुमित्राजी की गोद में बैठ गये।

गही पद लगे सुमित्रा अंका।
जनु भेंटी संपति अति रंका॥

इस मिलन में कितना प्रेम प्रकट हुआ इसका अनुमान हम लगा सकते हैं।

मानो राघवजी सुमित्राजी के प्रति अपनी की हुई त्रुटि का प्रायश्चित कर रहे हैं माँ! मुझे क्षमा कर दे जिसे आपने इतना प्रेम दिया वह

वनवास यात्रा के प्रथम आपको प्रणाम करने भी नहीं आ पाया आपसे आशीर्वाद भी नहीं पा सका और फिर भी आप क्षमा करके उस त्रुटि के तरफ ध्यान न देकर इस रामको मिलने के लिये चित्रकूट आ गई। माँ! आज आपने इस उक्ति को अक्षरश: सत्य करके बता दिया कि "कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति"

पुत्र कभी कुपुत्र हो सकता है परन्तु माता कभी कुमाता नहीं होती। अत: इसी त्रुटि का प्रायश्चित करने के लिये आज राघव अपनी इच्छा से सुमित्राजी की गोद में बैठ गये।

कौशल्याजी की गोद में बैठने के लिये श्रीराम किसी कारण विवश थे। कौशल्या की गोद में बैठने के लिये प्रभु को छ: छ: नियमों को छोड़ना पड़ा। व्यापकता को छोड़कर वे व्याप्य बने, ब्रह्मत्व को छोड़कर वे लघु बने, निरञ्जन को छोड़कर वे साञ्जन बने, निर्गुणत्व को छोड़कर वे सगुण बने, विगतविनोदत्व को छोड़कर वे विनोदयुक्त बने, अजन्मा होकर भी उन्हें जायमानत्व का अभिनय करना पड़ा इन सब नियमों को छोड़ने के लिये प्रभु प्रेम भक्ति के विवश हो गये,

व्यापक ब्रह्म निरंजन निर्गुन बिगत विनोद।
सोई अज प्रेम भगति बस कौशल्या के गोद॥

किन्तु सुमित्राजी की गोद में बैठते समय उन्हें कोई विवशता नहीं है वे अपनी इच्छा से बैठे। "गहि पद लगे सुमित्रा अंका" मानो वे सुमित्राजी की गोद से चिपक गये।

गोस्वामीजी उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो ऐसा लगता है जैसे दरिद्र ने अपनी सम्पत्ति को पा लिया हो,

"जनु भेंटी संपति अति रंका"

सुमित्राजी को आज अपनी सम्पति मिल गई। राघवेन्द्र उनकी अपनी सम्पति हैं। उनको सम्पति चित्रकूट में आ गई थी "राम बास बन सम्पति भ्राजा" उस सम्पति को आज सुमित्राजी पुन: पा गई थी। आज राघवजू सुमित्राजी के गोद में बिराज रहे हैं कितनी सुन्दर झाँकी है।

"गीत"

राम सुमित्रा गोद बिराजत
चित्रकूट बन प्रेम पुलक तन,
राजीवनयन सलिल भर भ्राजत……राम सुमित्रा ॥
चरन सरोज नाइ सिर पुनि पुनि
पोंछत……बसन अति राजत
—लाल कमल
—श्वेत सरोज
कहत न कछुक सकुची उर सोहत
सुसुकि सुसुकि रोवत दुख साजत ॥ राम सुमित्रा
सुमिरि सनेह मातु रघुपति को
गिरिधर कहत दशा हिय लाजत ॥ राम सुमित्रा

राघवेन्द्रजी सुमित्राजी के गोद में बिराज रहे हैं यही उपासना का सार सर्वस्व है जिनको गोद में लेने के लिये सभी तरसते हैं। शिवजी भी इन्हें गोद में लेने के लिये ज्योतिषी बनकर अवध में जाते हैं विश्वामित्रजी भी इन्हें गले से लगाने के लिये तरसा करते हैं। योगिन्द्र, मुनिन्द्र परमहंस अमलात्माओं की साधना इन्हीं को गोद में लेने की इच्छा में परिलीन होती है वहीं प्रभु आज अनायास ही उपासनारूप सुमित्राजी की गोद में आ जाते हैं।

भाव यही है कि सुमित्राजी का चरित्र स्वयं ही पुंजीभूत उपासना का चरित्र है जिसके द्वारा परमात्मा अनायास ही यहाँ आकर भक्त के तापत्रय को दूर करते हैं।

॥ इति शम् ॥

अष्टम कुसुम

"मंगलाचरण"

"श्रीरामचन्द्र मुखचन्द्र निविष्ट नेत्रा
त्रातारमेवजगतां परिलालयन्ती
तीव्रेण भक्तिरभसा करुणैकमूर्तिः
साकेतराजमहिषी जयता सुमित्रा ।।

नीलाम्बुजश्यामलकोमलाङ्ग सीता समारोपितवामभागम् ।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामि रामं रघुवंशनाथम् ।

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च ।
पतितानां पावनेभ्यो वैश्ववोभ्यो नमो नमः ।।
श्री सीतानाथ समारंभां श्रीरामचन्द्रार्य मध्यमाम्
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्री गुरु परम्पराम्
यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकांञ्जलिम्
बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्
नील ताभ रस दाम रुचि, चित्रकूट कृत धाम ।
निज पद कमले मधुप मिव, रमय मनो मम राम ।।

गौर किसोर वेष बर काछे ।
कर सर चाप राम के पाछे ।।
लछिमन नाम राम लघु भ्राता ।
सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ।।

परिपूर्णतम परात्पर परमात्मा जगत्‌बन्ध श्रीमद् साकेत-निकेतन. सीतारमण श्रीरामचन्द्रजू की भुवनपावनी कृपासे अनायासेन समुपलब्ध भगवत कथा सुधा रूप सुरसरी में स्नान करके हम अपने तापत्रय को शमन करने का प्रयास करें ।

आज श्री रामभद्र जी के प्रथम दर्शन में ही भावात्मिका होकर चतुर शिरोमणि मिथिलानियां भगवान् श्री राघवेन्द्र के साथ

साथ सुमित्रा के स्मरण को नहीं भुला पायीं। जबकि ऐसा नियम है कि परमात्मा के दर्शन के पश्चात् कुछ स्मरण नहीं रहता किन्तु धन्य है सुमित्राजी का व्यक्तित्व; जिसको श्रीरामरूप माधुरी भी विस्मृत नहीं करा सकी। श्रीराम के दर्शन से सखियां कृत कृत्य हुईं।

सुमित्राजी के वास्तविक चरित्र को तभी समझा जा सकता है जब हृदय की ग्रन्थियां समाप्त हो तथा मनुष्य का मन सम्पूर्ण ग्रन्थियों से रहित हो जाय एवं जीव के प्रारब्ध क्रियमाण तथा संचित ये तीनों कर्म समाप्त हो जाय। सौभाग्य से श्रीराम को निहार कर मिथिलानियों की हृदय की ग्रन्थि समाप्त हो गई। इसीलिये वे श्रीराम के साथ श्रीजानकीजी के ग्रन्थि बन्धन का प्रस्ताव कर रहे हैं और गाती भी हैं।

जिनकी किरपा तें छूटें त्रिगुन महान हे।
सोई निर्गुण के बंधलो गांठे के विधान हे॥

जब तक हृदय में स्थित जड़ चेतनात्मक ग्रन्थि नहीं छूट जाती तब तक श्रीसीताराम के परम पवित्र ग्रन्थि बन्धन का आनन्द भी नहीं आता। परमात्मा ने विचार किया कि मिथिला में मैं गांठ बधाऊंगा परन्तु पहले इनकी गांठ छोड़ दूं। भगवान् कितने प्यारे हैं सभी की ग्रन्थियों को छोड़कर अब वे स्वयं ग्रन्थि में बन्ध रहे हैं। कदाचित् श्रीराम ने मन में परिकल्पना की होगी। कि अब तक तो जीव ग्रन्थि में बन्धा रहा और विपन्न होता रहा परन्तु अब जीव की ग्रन्थि को छोड़कर मैं ही गांठ में बन्ध जाता हूं पर अन्तर हुआ जीव की ग्रन्थि जड़ात्मक है और परमात्मा की ग्रन्थि चेतन। आज चेतन से चेतन की गांठ बंधी,

मंगलमय सब अंग, मनोहर, ग्रथित चूनरी प्रित पिछोरी।
कनक कलस कहँ देत भाँवरे, रूप देखि सारद भइ मेरी॥

मिथिलानियों की ग्रन्थियां खुल गईं और उनके अतीत, वर्तमान तथा अनागत ये तीनों कर्म बन्धन समाप्त हो गये। आज उन्होंने इतनी ऊंची स्थिति को प्राप्त करने के बाद उपासनात्मक रूप सुमित्राजी की चर्चा करने के लिये योग्यता प्राप्त करली।

सुमित्राजी का व्यक्तित्व ही इतना ऊंचा है कैकयी ने अपने

जीवन में दो भूल की हैं उन्होंने सन्त को तथा भगवन्त को पहेचाना नहीं कैकयी ने भरतजी को सन्त नहीं माना तथा श्रीराम को भगवान नहीं समझा वह भरतजी को राज्यलोलुप मान बैठीं तथा श्रीराम को सत्ता का लिप्सु मानकर वनवास देने की षड्यन्त्र में लग गई। राघवेन्द्र को वह सामान्य राजपुत्र मान रहो हैं ब्रह्म नहीं इसीलिये कहती हैं कि—

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू।
होहूँ राम सिय पूत पतोहू॥

परन्तु सुमित्राजी ने अपना सन्तुलन कभी नहीं खाया। वे तो लक्ष्मणकुमार से यही कहतीं हैं कि तुम राघव को नहीं जानते। वे कौन हैं?

राम प्राणप्रिय जीवन जीके।
स्वारथ रहित सखा सबहिं के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते।
सब मानिये राम के नाते॥

इसी सूत्र ने लक्ष्मण कुमार के जीवन में चार चाँद लगा दिये।

कैकयी और सुमित्रा के व्यक्तित्व में बहुत अन्तर है कैकयी का व्यक्तित्व पृथ्वी के समान है और सुमित्रा का व्यक्तित्व आकाश के समान है। कैकयी का व्यक्तित्व पृथ्वी के समान होने के कारण ही उन्होंने अपने पुत्र भरत को पृथ्वी से जोड़ना चाहा अर्थात् भूपति बनाना चाहा पर सुमित्राजी का व्यक्तित्व आकाश के समान निर्मल है अतः उन्होंने अपने पुत्र लक्ष्मण कुमार को व्यापक एवं गगनसदृश परमात्मा के चरणों में जोड़ दिया।

अतः कैकयी भरतजी के आक्रोश का पात्र बनती हैं और सुमित्राजी लक्ष्मणजी के परितोष का।

चित्रकूट की समस्त सभाओं में सुमित्राजी मौन रहती हैं पर महिलाओं की सभा में उनका व्यक्तित्व निखर उठता है। चित्रकूट में भरतजी ने राघवेन्द्र के समक्ष चार पक्ष रखे,

सानुज पठइअ मोहि बन कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बन्धु दोउ नाथ चलौं मैं साथ॥

नतरु जाहिं बन तीनिउ भाई।
बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहि विधि प्रभु प्रसन्न मन होई।
करुना सागर कीजिअ सोई॥

भरतभद्र कहते हैं कि प्रभु! मेरा प्रथम पक्ष यह है कि मैं शत्रुघ्न के साथ वन में जाऊँ और आप श्री अवध में लौटकर सभी को सनाथ कीजिये यदि आप अयोध्या लौटना नहीं चाहते तो मेरा दूसरा पक्ष यह है कि आप दोनों छोटे भ्राताओं को अयोध्या भेज दें और मैं आपके साथ बन में चलूँगा। यदि इस पक्ष से भी आप सन्तुष्ट न हों तो मेरा तीसरा पक्ष यह है कि हम तीनों भ्राताओं को वन भेज दिया जाय और आप सीताजी के साथ अवध पधारें। तथा चतुर्थ पक्ष ये है कि प्रभु जिससे आप सन्तुष्ट हों वही किया जाय।

इसी संकल्प-विकल्प के मन्थन के बीच रात्रिकालीन महिलाओं की एक गोष्ठी का आयोजन हुआ। जिसमें कोशलराज महिषी एव मिथिलाराज-महिषी का मंगलमय संवाद हुआ। आज दोनों समधिनियाँ मिलकर भगवदीय चर्चा कर रही हैं। एक पक्ष है श्रीराम को माँ का तथा दूसरा पक्ष है श्रीसीताजी की माँ का। एक में प्रेम का प्राधान्य है तो दूसरी में ज्ञान का, एक ने भगवान् को प्रकट किया है तो दूसरी ने भक्ति को अपनी गोद में पाला है। सयोग से सभा का समय एवं स्थल भी अत्यन्त मधुर है। चित्रकूट जैसा नीरव स्थान तथा रात्रि का पूर्ण सन्नाटायुक्त वातावरण उसी परिस्थिति में ब्रह्मविचार की प्रतिष्ठा रूप सुनयना जी तथा राघवप्रेम की निष्ठारूप कौशल्याजी योजना बना रही हैं।

आज ज्ञानप्रधान मिथिलेश्वर की पत्नी प्रेमप्रधान कौशल्या जी के पास आकर अपनी ज्ञाननिष्ठा को भूल बैठीं और वह स्वयं सीताराम के प्रेम की मूर्ति बन गई।

सब सिय राम प्रीति किसि मूरति।
जनु करुना बहु वेष बिसूरति॥

सुनयनाजो ने ब्रह्मा की वक्र बुद्धि की निन्दा की

सीय मातु कह विधि बुधि बाँकी।
जो पय फेनु फोर पबि टाँकी॥

आक्रोश के साथ कहा कि ब्रह्मा की बुद्धि इतनी टेढ़ी है कि जिसने दूध के फेन को फोड़ने के लिये वज्र का उपयोग किया करते हैं। भरतजी को राज्य देना ही था तो दे दिया होता पर रामजी को वनवास की क्या आवश्यकता थी? उसी समय सुमित्राजी ने अपनी आध्यात्मिकता का परिचय देते हुए उपासना के सिद्धान्त को कहा,

सुनि ससोच कह देवि सुमित्रा।
विधि गति बड़ि बिपरीत बिचित्रा॥
सो सृजि पालइ हरइ बहोरी।
बाल केलि सम विधि मति भोरी॥

सुमित्राजी कहती हैं कि सखि। विधि की गति अति-विपरीत एवं विचित्र होती है।

सृष्टि के विषय में भिन्न भिन्न मत मिलते हैं कुछ लोगों के मत में सृष्टि पंचीकरण से होती है। सांख्याचार्य कहते हैं कि सृष्टि में सत्कार्यवाद होता है। कुछ लोग सृष्टि को मिथ्या मानते हैं। परन्तु सुमित्राजी का बड़ा मधुर एवं दृष्टव्य है।

कौशल्या कह दोष न काहू।
कर्म विवश दुख सुख छति लाहू॥

सुमित्राजी कहती हैं कि विधि की गति अति विचित्र है। सुनयनाजी ने जगत के सर्जन कोटि में ब्रह्मा जी को रखा पर सुमित्रा जी की दृष्टि में 'विधि' शब्द के दो अर्थ हैं एक ब्रह्मा, के जो केवल जगत का सर्जन करते हैं द्वितीय परब्रह्म जिनके द्वारा वे जगत का सर्जन पालन एवं संहार करते है।

जो सृजि पालइ हरइ बहोरी।
बाल केलि सम विधि मति भोरी॥

मानो सुमित्राजी यह कहना चाहती हैं कि आप ब्रह्मा जी

को व्यर्थ ही दोष दे रही है उनकी कोई गलती नहीं इस कार्य में पूर्ण रूप से श्रीराम की इच्छा ही काम कर रही है। सुमित्राजी समस्त जगत के व्यापार में केवल परमात्मा की इच्छा ही कारण जानती ह।

कौशल्याजी के मत में कर्म कारण है। परन्तु सुमित्राजी का पक्ष समुचित लगता है क्योंकि वह उपासना की पद्धति से जुड़ा हुआ है वे कहती हें कि कर्म जड़ है अतः वह जड़ कर्म चेतन की लीला में कैसे कारण बनेगा। इसलिये परमात्मा की लीला में केवल उनकी इच्छा ही कारण बनती है। परमात्मा ने अपने खेल के लिये ही संसार का निर्माण किया जैसे बालक मिट्टी के घर को बनाकर उसे सँवारता है तथा थोड़ी ही देर के बाद उसे तोड़ डालता है तो मिट्टी के घर को बनाने में, उसके सँवारने में तथा उसको तोड़ डालने में बालक का कोई हेतु नहीं रहता केवल यह उसका खेल है उसी प्रकार यह सब भगवान् की बालकेलि है बालक की क्रीड़ा के समान विधि को बुद्धि ही भोली भाली है सुमित्रा जी कहना चाहती हैं कि यह जो कुछ वनवास की लीला बनी उसमें केवल रामजो का भोलापन ही कारण हैं।

इस आध्यात्मिक तथ्य को जानने के कारण ही रामवनवास जैसी दारुण लीला के समय भी सुमित्राजी धैर्य धारण कर सकी। लोगों की दृष्टि में राम-वनवास विपत्ति है परन्तु सुमित्राजी की दृष्टि में वनवास रामजी के लिये सम्पत्ति है क्योंकि रामजी स्वयं सिंह हैं। धनुष भंग के पश्चात् मिथिला रंग मंच पर एकत्र हुए राजा लोग भी बड़बड़ाते हुए कहते हैं कि,

बैन तेय बलि जिमि चट कागू।
जिमि ससु चहै नागअरि भागू॥

प्रभु नाग + अरि याने सिंह है और लक्ष्मणजी भी सिंह किशोर हैं,

अरुन नयन भृकुटी कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप
मनहुं मत्त गजमन निरखि सिंघकिसोरहि चोप॥

तथा सीताजी स्वयं सिंहनी हैं, वे स्वयं कहती हैं,

को प्रभु संग मोहि चितवनिहारा।
सिंघवधुहि जिमि ससक सिआरा॥

अतः इस सिंह परिवार को वन ही सुखमय लगता है। इसीलिये राघवेन्द्रजी के व्यक्तित्व पर वनवास का कोई विपरीत असर नहीं पड़ा।

सुमित्राजी कहती हैं कि जगत की दृष्टि में रामजी वन गयें उन्हें क्लेश हुआ पर मेरी दृष्टि में कुछ अन्तर है। सामान्य विधाता चार मुख वाले वे संसार के नियन्त्रक हो सकते हैं पर अयोध्या की व्यवस्था में उनकी कुछ नहीं चलती क्योंकि अयोध्या संसार में नहीं आती अतः ब्रह्माजी की व्यवस्था यहाँ काम नहीं आती यहाँ की पूर्ण व्यवस्था स्वयं भगवान् रामजी की इच्छा से ही होती है।

विधि ह्रि विधिता हरि हि हरिता सिवहि जेहि सिवतादयी।
सोइ जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मंगलमयी॥

सुमित्राजी का कहना है कि यह जो कुछ भी लीला हुई है वह केवल रामजी की बालकेली है वे बहुत भोले हैं क्योंकि उन्हें किसी भी वस्तु में राग नहीं हैं। वनवास में आने में उनका यही तात्पर्य था कि जब तक वे भवन में रहे तब तक हमने उन्हें खेलने नहीं दिया,

निरखि परम विचित्र सोभा, चकित चितवहि मात।
हरष बिवस न जात कही, निज भवन विहरहु तात॥

हमने इनको रोक रखा भैय्या। अपने घर में ही खेलो। हमने अपने घर में ही उन्हें खेलने के लिये कहा। उन्हें खेलने के लिये उन्मुक्तता नहीं मिल पायी। बच्चों को जब तक उन्मुक्त रूप से नहीं खेलने दिया जाता तब तक उनको आनन्द नहीं आता अतः श्रीराम ने अपने खेलने के लिये वनवास का एक उपक्रम किया। इसमें दूसरा कोई हेतु नहीं है। इसलिये किसी को दोष नहीं देना चाहिये।

सूर्पणखा भी इसी तथ्य का समर्थन करती हैं

अवध नृपति दसरथ के जाये।
पुरुषसिंह बन खेलन आये॥

सुनयनाजी ने सुमित्राजी से पूछा कि यदि आपका यह कहना है कि राघवेन्द्रजी के लिये अयोध्या अथवा चित्रकूट में कोई अन्तर

नहीं है और वन में वे केवल अपनी बालक्रीड़ा करने आये,हैं तो फिर आपने श्रीराम रूप विधि की मति को भोरी क्यों कहा ?

"बाल केलि सम विधि मति भोरी"

सुमित्राजी ने कहा, कि प्रभुने इस बालकेलि में थोड़ा सा भोलापन कर दिया वह यह कि यदि उन्हें खेलने के लिये ही वन जाना था तो बिना कारण व्यर्थ ही उन्होंने कैकेयी को अपयश दिलवाया। यदि वे अपनी इच्छा को पिताजी से स्पष्ट कह देते कि मुझे खेलने का मन है तो इतनी करुणा नहीं होती। महाराजा का जीवन न जाता। यह ही भोलापन हो गया कि उन्होंने अपनी योजना को स्पष्ट रूप से बताया नहीं।

यह है सुमित्राजी का वात्सल्य। वनवास की घटना को इतने मनोवैज्ञानिक रूप से सुमित्रा के अतिरिक्त किसी ने भी निरूपित नहीं किया। सुमित्राजी के इस संवाद से सुनयनाजी को पूर्ण संतोष हुआ दोनों के नाम के आगे 'सु' जुड़ा हुआ है। एक में मित्रत्व की प्रधानता है तो दूसरी में नयनत्व की।

अन्त में इस महिला सभा में कौशल्याजी ने सुनयनाजी से कहा कि मुझे भरतजी की बहुत चिन्ता हो रही है बार बार मुझे महाराजा ने यह कहा था कि भरत यह कुलदीपक है अत: मेरा यह मत आप अवसर पाकर महाराजा जनकजी से कहियेगा कि

रखिअहिं लखनु भरतु गवतहिं बन।
जौं यह मत मानै महीप मन॥

यदि आपको उचित लगे तो लक्ष्मण को घर पर रखकर भरत को राम के साथ वन में भेज दिया जाय।

चर्चा चल रही थी कोई उठने का नाम ही नहीं ले रहा था वातावरण करुण हो गया था उसी समय धैर्य धारण कर सुमित्राजी ने कहा,

सब रनिवासु बिथकि लखि रहेऊ।
तब धरि धीर सुमित्रा कहेऊ॥
देवि दंड जुग जामिनि बीती।
राम मातु सुनि उठी सप्रीती॥

जब लक्ष्मणजी को घर पर रखने की चर्चा हुई तब तुरन्त ही सुमित्राजी कहती हैं कि देवि ! दो दण्ड रात्रि व्यतीत हो चुकी है अर्थात अब उठना चाहिये। सुमित्राजी अपने पुत्र लक्ष्मणजी की सुन्दर मित्र होने के कारण उनके अहित की चर्चा सहन नहीं कर पातीं अतः वे तुरन्त ही कौशल्याजी को सभा विसर्जन करने का संकेत करती हैं।

"देवि दंड जुग जामिनि बीती"

इसका बड़ा मधुर तात्पर्य है सुमित्राजी का संकेत है कि जो कुछ हुआ है, जो कुछ हो रहा है वह सब भगवान् रामकी इच्छा से हो रहा है तो उन प्रभु के विधान पर हमें आपत्ति नहीं करनी चाहिये। क्यों न हम केवल भजन करें। भगवान् के विधान पर हमारा कोई आग्रह नहीं होना चाहिये। अधिक तर्क करने से समय व्यर्थ ही व्यतीत हो जाता है और उपासना में समय का बहुत महत्व है। रात्रि का समय भजन करने के लिये होता है। सुमित्राजी स्वयं उपासना होने के कारण उपासना के लिये रात्रि को बहुत ही उपयुक्त मानती हैं। वे निरर्थक समय को व्यतीत करना नहीं चाहती इसलिये व्यंजना में सभी को चलने का संकेत करती हैं।

सुमित्राजी की बात सुनकर सुनयनाजी को अत्यन्त सन्तोष हुआ और उन्होंने कहा कि

रामु जाइ बनु करि सुर काजू।
अचल अवधपुर करिहहिं राजू॥
अमर नाग नर राम बाहुबल।
सुख बसिहहिं अपने अपने थल॥
यह सब जागबलिक कहि राखा।
देवि न होइ मुधा मुनि भाखा॥

अर्थ :— श्री रामचन्द्रजी वन में जाकर देवताओं का कार्य करके अवधपुरी में अचल राज्य करेंगे। देवता, नाग और मनुष्य सब श्री रामचन्द्रजी की भुजाओं के बल पर अपने-अपने स्थानों (लोकों) में सुखपूर्वक बसेंगे। यह सब याज्ञवल्क्य मुनि ने पहले ही से कह रखा है। हे देवि ! मुनि का कथन व्यर्थ (झूठा) नहीं हो सकता।

॥ इति शम् ॥

नवम कुसुम

श्री राघवो विजयतेताम्

जयति सुशील सुमित्रा गुणगणचित्रा निसर्ग सुमित्रा।
यद् वात्सल्यसुधाब्धिविलसति दृष्टवैव रामेन्दुः॥

नीलाम्बुज श्यामलकोमलाङ्ग सीता समारोपित वमभागम्।
पाणौ महासायकचारुचापं नमामिरामम रघुवंशनाथम॥

श्री सीतानाथ समारम्भां श्री रामानन्दार्य मध्यमाभू।
अस्मदाचार्य पर्यन्तां वन्दे श्री गुरु परम्पराभू॥
वाच्छा कल्प तरुभ्यश्च कृपा सिन्धुभ्य एव च।
पतितानां पावनेभ्यो श्री वैस्नावेभ्यो नमो नमः॥

गौर किसोर वेष बर काछे।
कर सर चाप राम के पाछे॥
लक्षिमन नाम राम लघु भ्राता।
सुनु सखि तासु सुमित्रा माता॥

परिपूर्णतम् परात्पर परमात्मा भक्तगच्छाकल्पतरु शरणागत सुलभ, वैष्णवजनचिन्तामणि, मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामभद्रजू की भुवनपावनि कृपा से अनायासेन समुपलब्ध श्रीराम कथा मन्दाकिनी के सीकरो से हम अपने को शीतल करने का प्रयास करें।

सुमित्राजी अयोध्यादिपति चक्रवर्ती महाराजा दशरथजी की अत्यन्त बुद्धिमती महिषी हैं प्रायशः घरकी व्यवस्था में, बालकों की सेवा सुश्रूषा में और अन्य कार्य करने में सुमित्राजी अत्यन्त पटु हैं।

श्रीरामजी के विवाह के पश्चात् जब बारात अयोध्या में आ रही थी उस समय सभी मातायें प्रेमवश शिथिल हो गईं,

प्रेम प्रमोद विवस सब माता।
चलहिं न चरन सिथिल भै गाता॥
रामदरस हित अति अनुरागी।
परिछन साज सजन सब लागी॥

सभी मातायें अपरिछिन्न परमात्मा का परिछन करने के लिए तैयारी कर रही हैं, किन्तु मंगलों को सजाने का कार्य सुमित्राजी ने अपने हाथों में लिया

बिबिध बिधान बाजने बाजे।
मंगल मुदित सुमित्रा साजे॥

इसका भाव बड़ा मधुर है। धन्य हैं सुमित्राजी जिनसे सभी वस्तुयें सजती हैं। उन सजने वाले उपकर्णों को भी मानो भगवती सुमित्राजी सजा रही हैं साजों को भी सुमित्राजी सजाती हैं। अयोध्या में मंगल पहले से ही शरीर धारण करके आ गये हैं,

मंगल सगुन मनोहरताई।
रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई॥
जनु उछाह सब सहज सुहाये।
तनु धरि धरि दशरथ गृह आये॥

सभी मंगल शरीर धारण करके चक्रवर्तीजी के यहाँ श्रीरामजी का विवाह देखने के लिये आ गये,

देखन हेतु राम बैदेही।
कहहु लालसा होही न केही॥

भगवान् सीता – रामजी को देखने के लिये भला किसको लालसा नही होगी ?

भाव यह है कि अब तक मंगल निराकार थे परन्तु सगुन साकार प्रभु को देखने के लिये मंगल भी साकार हो गये। मंगलों ने शरीर धारण तो कर लिया परन्तु इनको सजायें कौन ? इनको गहने पहनाये कौन ? सभी लोग तो अपने अपने सजने में लग गये तब सुमित्राजी ने कहा आज मैं इन मंगलों को सजाऊंगी,

"मंगल मुदित सुमित्रा साजे"

आज सुमित्राजी ने बारह मंगलों को सजाया,

हरद दूब दधि पल्लव फूला।
पान पूगफल मंगल मूला॥
अच्छत अंकुर रोचन लाजा।
मंजुल मंजरि तुलसि बिराजा॥

हलदी, दूर्वा, दही, पल्लव, फूल, पान, सुपारी, अक्षत, अंकुर, गोरोचन, लाजा तथा तुलसी मंजरी।

श्रीरामजी की बारात जब मिथिलापुरी जा रही थी उसी समय बारह सुगुन हुए,

चारा चाषु बाम दिसि लेई।
मनहुं सकल मंगल कहि देई॥
दाहिन काग सुखेत सुहावा।
नकुल दरसु सब काहूँ पावा॥
सानुकूल बह त्रिविध बयारी।
सघट सबाल आव बर नारी॥
लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा।
सुरभि सनमुख सिसुहि पिआवा॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई।
मंगल गन जनु दीन्हि देखाई॥
छेमकरी कह छेम बिसेखी।
स्यामा बाम सुतरु पर देखी॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना।
कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना॥

मंगलमय कल्यानमय अभिमत फल दातार।
जनु सब साचे होन हित भये, सगुन एक बार॥

श्रीरामजी की बारात ऐसी बनी है कि उसका वर्णन करते नहीं बनता। सुन्दर शुभदायक शकुन हो रहे हैं (१) नीलकण्ठ पक्षी बायीं ओर चारा ले रहा है, मानो सम्पूर्ण मङ्गलों की सूचना दे रहा

हो। दाहिनी ओर (२) कौआ सुन्दर खेत में शोभा पा रहा है। (३) नेवले का दर्शन भी सब किसी ने पाया। तीनों प्रकार की हवा अनुकूल दिशा में चल रही है। श्रेष्ठ सुहागिनी स्त्रियाँ भरे हुए घड़े और गोद में बालक लिये आ रही हैं। लोमड़ी फिर फिर कर दिखायी दे जाती है। गायें सामने खड़ी बछड़ों को दूध पिलाती हैं। हिरनों की टोली बायीं ओर से घूमकर दाहिनी ओर को आयी, मानों सभी मङ्गलों का समूह दिखायी दिया। क्षेमकरी चील विशेष रूप से कल्याण कर रही है। श्यामा बायीं ओर सुन्दर पेड़ पर दिखायी पड़ी। दही, मछली और दो विद्वान ब्राह्मण हाथ में पुस्तक लिये हुए सामने आये। सभी मङ्गलमय, कल्याणमय और मनोवाञ्छित फल देने वाले शकुन मानो सच्चे होने के लिये एक ही साथ हो गये।

इस प्रकार बारह मङ्गल पहले एवं बारह मङ्गल पश्चात हुए चौबीस मङ्गलों ने आकर प्रभु का स्वागत किया मानो चौबीस अवतारों के मङ्गल जुटकर दुल्हे रामजी का सगुन मनाने उपस्थित हो गये हैं। अथवा राघवेन्द्र चौबीस कैरेट का सोना है उनके लिये चौबीसों मङ्गल नाच उठे उन्हें लग रहा है अब ही ब्रह्माजी ने हमको सच्चा कर दिया है।

विवाह प्रसङ्ग में सुमित्राजी ने सभी मङ्गलों को सजाया। उसी प्रकार प्रथम राज्याभिषेक प्रसङ्ग में भी सुमित्राजी ही सुन्दर चौक मणियों से पूरतीं हैं,

चौकें चार सुमित्राँ पूरी।
मनिमय बिबिध भांति अति रूरी॥

सुमित्राजी स्वयं उपासना हैं अतः सेवा करना उनका सहज स्वभाव है। उपासना में व्यक्ति स्वामी नहीं बनता, दास ही बन जाता है।

अब हम आपको एक ऐसे करुण प्रसङ्ग की ओर ले जाते हैं जिसके द्वारा सुमित्राजी की पूर्ण वास्तविकता से आप परिचित हो जायेंगे!

श्रीराम – रावण का घोर युद्ध चल रहा है युद्ध का द्वितीय दिवस है, द्वितीय दिवसीय युद्ध में कुछ विलक्षणता है मेघनाद ने अपना घोषणा पत्र पढ़ा,

कहं कोसलाधीस द्वौ भ्राता।
धन्वी सकल लोक विख्याता ।।
कहं नल नील दुबिद सुग्रीवा।
अंगद हनूमत बल सींवा ।।
कहां विभीषण भ्राता द्रोही।
आजु सबहि हठि मारउं ओही ।।

आठ वीरों के नाम पढ़े। मेघनाद ने इन आठों वीरों के रहते हुए भी आठ प्रहर के अन्दर ही भातृद्रोही विभीषण का वध करूंगा ऐसी भोषण प्रतिज्ञा की। प्रतिज्ञा बड़ी कठिन थी। मेघनाद ने प्रतिज्ञानुसार दस दस बाण मार कर सबको मूर्छित कर दिया। हनुमानजी जब उसके सामने दौड़े तो वह भाग गया। लक्ष्मणजी एवं रामजी की उसने प्रशंसा की। श्रीराम के ऊपर उसने अनेक शस्त्रास्त्रों का प्रयोग किया लक्ष्मणकुमार ने कहा, प्रभु! क्षमा कीजिये मेघनाद के साथ आपका युद्ध अच्छा नहीं लगता आप अयोध्या के राजाधिराज हैं एवं मेघनाद लका का राजकुमार है अत: राजा के साथ राजकुमार का युद्ध उचित नहीं है। इसलिये आज लंका के राजकुमार के साथ अयोध्या का राजकुमार लक्ष्मण युद्ध करेगा। भगवान् ने कहा लक्ष्मण! यह इन्द्रजित है लक्ष्मण ने कहा कोई बात नहीं ये इन्द्रजित है तो मैं इन्द्रियजित हूं। प्रभु ने पुन: कहा कि इसकी माँ मन्दोदरी है। लक्ष्मणजी ने कहा कि तो मेरी माँ मैथिली हैं अत: मैं युद्ध करूंगा। राघवेन्द्र के पास से आज्ञा पाकर लक्ष्मणजी युद्ध के लिये चल पड़े।

लछिमन मेघनद दोउ जोधा।
भिरेउ परसपर करि अति क्रोधा ।।

लक्ष्मणकुमार ने क्रोध करके मेघनाद के रथ एवं सारथी को नष्ट कर दिया बड़े भीषण बाणों का प्रहार किया। उस समय,

रावन सुत अस मन अनुमाना।
संकट भये हरिहिं मम प्राना ।।

मेघनाद ने अनुमान किया कि अब तो मेरे प्राण संकट में है अत: मैं लक्ष्मणकुमार को हराने के लिये विभीषणजी के ऊपर वीरघातिनी शक्ति का प्रयोग करूँगा जिससे विभीषणजी समाप्त हो जायेंगे और लक्ष्मणजी युद्ध से विराम ले लेंगे।

वीरघातिनी छाँडिसि सांगी।
तेजपुंज लछिमन उर लागी॥

धन्य हैं सुमित्राजी का दूध ! वीरघातिनी शक्ति का प्रयोग विभीषणजी के लिये हो रहा है लक्ष्मणजी ने सोचा कि यदि मैं विभीषणजी को नहीं बचाऊँगा तो एक क्षण में वे समाप्त हो जायेंगे और वे लोग यही कहेंगे कि विभीषणजी को राघवेन्द्रजी ने शरण में लिया पर उसकी रक्षा न कर सके अत: यदि मैं समाप्त हो जाऊँ तो कोई आपत्ति नहीं पर उसमें मेरे रहते श्रीरामचन्द्र के यशचन्द्र में कालिका नहीं लगने दूंगा। लक्ष्मणजी ने सामने आकर उस वीरघातिनी शक्ति को अपने छाती पर स्वीकार लिया। उसके लगने से चाहे जैसा वीर हो उसका नाश हो जाता है पर जिस छाती पर राघवेन्द्रजी के चरणारविन्द बिराजमान रहे हो उसकी मृत्यु कैसे हो सकती है ? शक्ति लगी और लक्ष्मणजी की छाती को भेद कर सीधी पाताल में चली गई। लक्ष्मणजी मूर्छित हुए,

मूर्छा भई सकति के लागे।
पुनि चलि गयउ निकट भय त्यागे॥

मेघनाद ने लक्ष्मणकुमार को उठाना चाहा, पर वे जगत के आधार हैं उन्हें मेघनाद कैसे उठा सकेगा ? लक्ष्मणजी काल हैं जब काल मूर्छित हो गया तो "करालं महाकाल कालं कृपालम्" ऐसे महाकाल हनुमानजी लक्ष्मणजी को उठाकर कालातीत परमात्मा के पास ले गये। अनुज को देखकर प्रभु बड़े दु:खी हुए,

तब लगि लै आये हनुमाना।
अनुज देखि प्रभु अति दुख माना॥

मेरो सब पुरुषारथ थाको।
बिपति बँटावन बंधु-बाहु बिनु करौं भरोसो काको॥
सुनि सुग्रीव साँचेहू मोपर फेरयो बदन बिधाता।

ऐसे समय समर संकट हौं तज्यो लषन सो भ्राता।
गिरि कानन जैहैं साखा मृग हौं पुनि अनुज सँघाती।
ह्वैहै कहा विभीषनकी गति रही सोच भरि छाती॥
तुलसी सुनि प्रभु बचन भालु कपि सकल बिकल हिय हारे,
जामवंत हनुमंत बोलि तब औसर जानि प्रचारे॥

[गीतावली, लंका–७]

प्रभु कहने लगे, अब मेरा सारा पुरुषार्थ थक गया! अपनी विपत्ति को बँटाने वाले भाई रूप भुजा के बिना अब मैं किसका भरोसा करूँ? हे सुग्रीव! सुनो, विधाता ने सचमुच मेरी ओर से मुँह फेर रखा है, इसीसे ऐसे समय युद्ध का संकट उपस्थित होने पर मुझे लक्ष्मण जैसे भाई ने त्याग दिया, बानर तो पर्वत और वनों में चले जायँगे और मैं भैया लक्ष्मण का साथ पकड़ूँगा परन्तु मेरे हृदय में यही सोच भरा हुआ है कि विभीषण की क्या गति होगी? तुलसीदासजी कहते हैं कि प्रभु के ये बचन सुनकर सब रीछ-वानर हृदय में व्याकुल होकर थकित हो गये। तब जाम्बवान् ने हनुमानजी को बुलाकर उत्तेजित किया।

हनुमान जी ने तुरन्त ही ललकार कर कहा,

जौं हौं अब अनुशासन पावौं।
तौं चन्द्रमहि निचोरि चैल ज्यौं आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौं व्यालावलि अमृत कुण्ड महि लावौं।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
बिबुध वैद बरबस आनौ धरि, तौं प्रभु अनुज कहावौं।
पटकौं नीच पूर्वक त्रिज्यों सब को पाप बहावौं॥
तुम्हरी कृपा प्रताप तुम्हारुहि करत विलंब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जग तुम्हरै मन भावौं॥

प्रभो! यदि इस समय मुझे आज्ञा मिले तो मैं चन्द्रमा को वस्त्र के समान निचोड़कर उससे अमृत लाकर ही आपको सिर नवाऊँ। अथवा पाताल में अमृत की रक्षा करने वाले सर्पों को मारकर अमृत-कुण्ड को भूमि पर उठा लाऊँ। यदि उससे भी काम न चले तो भुवनकोश को फोड़कर सूर्य को बाहर निकाल दूं और तुरन्त ही उस छिद्र पर राहु को रखकर उसे मूँद दूं जिससे फिर सूर्य

न आ सके और प्रात:काल न हो। ये ही नहीं यदि मैं देवताओं के वैद्य अश्विनीकुमारों को बल पूर्वक ले आऊँ तभी प्रभु का अनुचर कहलाऊँ। नीच मृत्यु को मूषक के समान पटक दूं फिर किसी को मरने का ही भय न रहे।

भगवान् ने हनुमानजी को समझाकर कहा कि नहीं चन्द्रमा को निचोड़कर लाने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि आपने ही कहा था कि,

कह हनुमंत सुनहु प्रभु ससि-तुम्हार प्रिय दास।
प्रभु मूरति विधु उर बसति सोइ स्यामता अभास ।।

अत: चन्द्रमा मेरा प्यारा भक्त है। लक्ष्मण को जिलाने के लिये मेरे प्यारे भक्त को निचोड़ दिया जाय यह उचित नहीं है। पुन: कहा कि लक्ष्मणजी स्वयं सर्पों के राजा है उन्हें जिलाने के लिये सर्पों का वध किया जाय तो ये जियेंगे ही नहीं। और सूर्य नारायण हमारे कुलदेवता हैं। सूर्यकुल के बालक को जिलाने के लिये सूर्य को ही घर से निकाल दिया जाय यह कहां तक उचित होगा? अरे हनुमान! आप कहते हो कि मृत्यु को ही पटक दूं जिससे मृत्यु ही मर जाये परन्तु यदि यमराज को ही मार डालोगे तो राक्षस वध की प्रतिज्ञा कैसे पूरी होगी? फिर तो किसी भी राक्षस की मृत्यु होगी ही नहीं। अत: ऐसा कुछ भी नहीं करना है। वास्तव में तुम्हारा कथन सर्वथा सत्य है तुम यह सभी कुछ करने में समर्थ हो पर इस समय केवल एक वैद्य की आवश्यकता है,

जामवंत कह वैद्य सुषेना।
लंका रहइ सो पठइय लेना ।।

हनुमानजी वैद्य सुखेन के आदेश से संजीवनी लेने जाते हैं। मार्ग में कपटी कालनेमि का वध करके पूरे द्रोणाचल पर्वत को ही उठाकर ले आ रहे हैं। रात्रि के समय इतना बड़ा पर्वत लिये हनुमानजी को अयोध्या के ऊपर से उड़ते देख भरतजी ने अनुमान किया कि निश्चित ही यह कोई निशिचर है जो पर्वत को अयोध्या के ऊपर फेंक कर उसका नाश करना चाहता है तुरन्त ही उन्होंने बिना फल का बाण हनुमानजी को मारा,

देखा भरत बिसाल अति, निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ, चाप श्रवन लगि तानि॥

रात्रि के समय पादुका जी को शयन करा दिया था अतः उनसे आज्ञा नहीं ली, नहीं तो भरतजी प्रत्येक कार्य पादुकाजी की आज्ञा लेकर ही करते हैं।

आयसु मागि करहि पुनि, राज काज बहु भाँति।
मांगि मांगि आयसु करत राज-काज बहु भांति॥

इसलिये यह अनर्थ हो गया। बाण के लगते ही हनुमानजी मूर्छित हो गये परन्तु उस समय वे पर्वत के साथ नीचे गिरते तो सारी अयोध्या समाप्त हो जाती तत्क्षण ही हनुमानजी ने पर्वत को अपने पिता पवन देव को सौंप दिया और स्वयं पृथ्वी पर राम राम का स्मरण करते गिर पड़े।

परेउ मुरछि महि लागत सायक।
सुमिरत राम राम रघुनायक॥

भरतजी जान गये अरे! अनर्थ हुआ ये तो स्वयं प्रभु श्रीरामजी के दूत हैं। बड़े प्रेम से उन्हें जगाया अपनी प्रीति को कसौटी पर लगाया आँजनेयजी की मूर्छा दूर होती है ये समाचार सभी माताओं को प्राप्त होते ही वे दौड़कर आयीं सुमित्राजी ने भी ये समाचार सुना,

सुनि रन घायल लषन परे हैं।
स्वामिकाज संग्राम सुभटसौं लोहे ललकारि लरे हैं॥

कि लक्ष्मणजो युद्ध स्थल में घायल पड़े हैं। उन्होंने अपने स्वामी के लिये विपक्षी योद्धा मेघनाद से रणभूमि में खूब ललकार-कर लोहा भिड़ाया है। उसकी शक्ति के लगने से वे मूर्छित हो गये हैं इतना सुनकर,

सुवन सोक, संतोष सुमित्रहि रघुपति भगति बरे हैं।
छिनछिन गात सुखात छिनहिंछिन हुलसत होत हरे हैं॥

पुत्र की दशा से सुमित्राजी को शोक तो हुआ पर इस बात

से संतोष हुआ कि उन्होंने रघुनाथजी की भक्ति को स्वीकार किया है। उनके अङ्ग एक क्षण में सूख जाते हैं तो दूसरे क्षण में आनन्द से हरे हो जाते हैं।

सुमित्राजी ने आँखों में आँसू भरकर स्वभाव से ही हनुमानजी से कहा—

कपिसौं कहति सुभाय अँबके अबक अँवु भरे हैं।
रघुनन्दन बिनु बन्धु कुअवसर जधपि धनु दुसरे हैं॥

रामजी कुअवसर में भाई से बिछुड़ गये। यद्यपि धनुष उनके साथ है जिसके होते हुए उन्हें अन्य किसी की सहायता की अपेक्षा नहीं है।

सुमित्राजी कहती हैं आंजनेय! आज मेरी कोख धन्य हो गयी, मेरा बेटा राघवेन्द्रजी के कार्य में अपने प्राणों की आहुति दे चुका।

धनि धनि भयी कोख मम आजू।
जूझेउ तनय स्वामि हित काजू॥

किन्तु मन में एक ही दुःख है,

एकहि दुख होत मोहि ताता।
कुसमय परेउ राम बिनु भ्राता॥

कि श्रीराम आज भ्राता के बिना असहाय हो गये होंगे। उनका कोई सहायक नहीं रहा।

धन्य हैं माँ सुमित्रा। अपने पुत्र पर किस माँ को प्रेम नहीं होता, पर पुत्र की मृत्यु जैसी अवस्था में सुनकर भी माँ सुमित्रा प्रसन्न हो गयीं अपने को कृतकृत्य मान रही हैं कि मेरे पुत्र का जन्म एवं मृत्यु दोनों भी सफल हुए। हनुमानजी से इतना कहकर पास में बैठे हुये शत्रुघ्नजो से उन्होंने कहा,

तात जाहु कपि संग रिपुसूदन उठिकर जोरि खरे हैं।
प्रमुदित पुलकि पैंत पूरे जनु बिधि बस सुढर ढरे हैं॥

बेटा! तुम्हारे बड़े भ्राता ने प्रभु श्रीराम की सेवा में अपने प्राणों की आहुति दे दी अब तुम क्यों चुप हो? उठो, तैयार हो युद्ध के लिये, और अपने बड़े भाई के सहायक बनो।

माँ वही होती हैं जिसका बेटा रामजी के चरणों में अपने को न्योछावर करके अमरत्व को प्राप्त करले।

यह सुनते ही शत्रुघ्नजी हाथ जोड़कर खड़े हो गये और शरीर में पुलकायमान होकर ऐसे प्रसन्न हुए मानो दैवयोग से उनके पूरे पूरे दाँव पड़ गये हों। अन्त में,

अंब अनुजगति लखि पवनज-भरतादि गलानि गरे हैं,
तुलसी सब समुझाय मातु तेहि समय सचेत करे हैं।

[गीतावली लंका—१६]

माता और छोटे भाई की यह दशा देखकर हनुमानजी और भरतजी ग्लानिग्रस्त हो गये। तब माता कौशल्या ने उन सबको समझाकर सचेत किया। और हनुमानजी से कहा कि तुम राघव को मेरा सन्देश सुना देना कि लक्ष्मण के सहित ही तुम्हारा नाम सुन्दर लगता है। अर्थात् तुम्हारी शोभा लक्ष्मण के साथ ही लौटने में है।

ये हैं हमारी भारत की मातायें कि व्यक्तित्व के प्रताप को देखकर सूर्य को त्रस्त करने वाले हनुमानजी स्वयं तपने लगे।

संजीवनी प्राप्त करके लक्ष्मणजी स्वस्थ हो उठे। उनसे पूछा गया कि लक्ष्मण कुमार कुछ पीड़ा हुयी तो 'हृदय घाव मेरे, पीर रघुवीरहिं।' उन्होंने कहा कि घाव मेरे हृदय में लगा परन्तु पीड़ा रघुवरजी को हुई।

हनुमानजी के शरीर में कुछ अवध की मिट्टी लगी हुई थी राघवेन्द्र पहचान गये उनको गले से लगा लिया और अवध की मिट्टी को उठाकर अपने सिर पर धारण कर ली।

प्रभु ने सहसा हनुमानजी से पूछा कि क्यों आंजनेय। यह मिट्टी कैसे शरीर पर लग गयीं?

हनुमानजी ने सहज उत्तर दिया कि प्रभु ! भरतजी के तुक्के से नीचे गिर पड़ा था।

भगवान् ने कहा क्यों सामान्य तुक्के से नीचे गिर पड़े ?

आंजनेय ने कहा इसमें कौन बड़ी आश्चर्य की बात है। उसी अवध में आप हजारों बार गिर कर उठे फिर उठ कर गिरे हो जहाँ हमारा ठाकुर ही हजारों बार गिर गिर कर उठता रहा हो उस अवध में यदि मैं एक ही बार गिरा तो कौन आपत्ति हो गई ?

इस प्रकार राम-रावण संग्राम सम्पन्न हुआ। श्रीराम विजयो हुए और इधर सुमित्राजी का स्वप्न भी साकार हुआ,

जेहि न राम बन लहहि कलेसू।
सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

अन्तिम झाँकी के दर्शन गोस्वामी जी करा रहे हैं। जब समरविजयी श्रीराम, लक्ष्मण एवं जानकीजी के साथ श्री अवध को लौटते हैं तब श्रीराम तथा लक्ष्मणजी कौशल्याजी से एवं माताओंअ से मिले, परन्तु उस समय श्रीरामजी के चरणों में अत्यन्त प्रीति जानकर माँ सुमित्राजी सामने से अपने बेटे लक्ष्मणजी से मिलती हैं,

भेटेउ तनय सुमित्रा, राम चरन रति जानि।

अपने बालक को प्रभु श्रीराम के चरणारविन्द का प्रेमो बनाकर, सुमित्राजी भारतीय इतिहास में सदा सदा के लिये अमर हो गयीं और मानसकार मुक्तकण्ठ से गा उठे,

लछिमन नाम राम लघु भ्राता।
सुनु सखि तासु सुमित्रा माता॥

ये गान कर रही हैं मिथिला नगरी की नारियाँ कि जिनका परिचय देते हुए गोस्वामी जी कहते हैं कि,

पुर नरनारी सुभग सुचि संता।
धरमसील ग्यानी गुनवंता॥

मिथिला नगर की सभी नर नारियाँ सुभग, पवित्र, संत, धर्मशील, ज्ञानी एवं गुणवान हैं यदि वे सभी सुमित्राजी के गुणगान करती हैं तो सुमित्राजी स्वयं परम सुभग, परम पवित्र, परम संत परम धर्मशीला, परम ज्ञानी एवं परम गुणवंती हैं।

सुमित्राजी का स्मरण करने से माताएँ लक्ष्मण कुमार एवं शत्रुघ्न कुमार जैसे पुत्र प्राप्त करती हैं।

सुमित्राजी सदा सदा के लिये श्रद्धापूर्वक स्मरणीय बन गई !

❀ इति शम् राघवः सन्तनोतुः ❀